आश्रम–भजनावलि

आश्रम-भजनावली

वैष्णव जन तो तेने कहीए
जे पीड पराई जाणे रे;
परदु:खे उपकार करे तोये
मन अभिमान न आणे रे.
- नरसिंह महेता

मुद्रक और प्रकाशक
विवेक जितेन्द्र देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-३८० ०१४
E-mail: sales@navajivantrust.org
Website: www.navajivantrust.org

महात्माजीकी प्रस्तावना

दुःखकी बात है कि भजनावलिकी नई आवृत्तिकी प्रस्तावना मुझे लिखनी पड़ती है । संग्रह करनेवाले तो कै. खरे शास्त्री थे ।

लिखनेकी योग्यता मैं नहीं रखता; फिर भी इतना तो कह सकता हूँ कि जो संग्रह किया गया है, उसमें मुख्य हेतु यह है कि नैतिक भावना प्रबल हो । यह भी समझने लायक़ बात है कि एक ऐसा समूह पैदा हो गया है, जो इन भजनोंको कई बरसोंसे भक्ति-भावसे पढ़ता आया है । तीसरी बात यह है कि इस संग्रहमें किसी भी एक सम्प्रदायका ख़याल नहीं रखा गया है | सब जगहसे जितने रत्न मिल गये, इकट्ठे कर लिये गये हैं । इसलिए इसे काफ़ी हिन्दु, मुसलमान, ख़िस्ती, पारसी शौक़से पढ़ते हैं और इससे कुछ-न-कुछ नैतिक खुराक पाते हैं।

संस्कृत श्लोकोंका अर्थ देनेमें भाई किशोरलाल मशरूवालाने काफ़ी परिश्रम उठाया है ।

प्रसादपुर, ८-२-१९४७ मो.क. गांधी

प्रास्ताविक

श्रुति कहती है कि, "ईश्वर एक है, किन्तु भक्त लोग अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार अलग अलग नाम-रूपसे उसकी उपासना करते हैं ।" यह सनातन सत्य जिन लोगोंने पाया, उन पर यह ज़िम्मेदारी आ पड़ी है कि वे अपने जीवनमें सर्व-धर्म-समभाव और विश्व-बन्धुत्वका विकास करें ।

'स्व-धर्म' के तत्त्वका पालन करते हुए हमारे आश्रमने सब धर्मों और पन्थोंके प्रति आदर रखनेका व्रत लिया है । उसके अनुसार आश्रममें उभय सन्ध्याकालको जो उपासना या प्रार्थना की जाती है उसका यह संग्रह है | आश्रमका जीवन जैसा समृद्ध होता गया, वैसा यह भजन-संग्रह भी बढ़ता गया है ।

हम प्रार्थना करते हैं कि हमारी यह वाङ्मयी उपासना प्रभुको प्रिय हो ।

सत्याग्रहाश्रम नारायण मोरेश्वर खरे
साबरमती

भजनावलिका विकास

गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीकामें थे और वहाँ उन्होंने सामुदायिक जीवनका प्रारंभ किया, तब वहाँ शामकी ही प्रार्थना होती थी। उस समय जो भजन गाये जाते थे, उनका संग्रह "नीतिनां काव्यो" के नामसे उन्होंने प्रकाशित किया था। साथ साथ गीतामें से स्थितप्रज्ञके लक्षण भी प्रार्थनाके समय गानेका रिवाज उन्होंने चालू किया।

सन १९१४ में जब गांधीजीने स्थायी रूपसे हिन्दुस्तानमें आकर रहनेका तय किया, तब उनके आश्रमपरिवारके लोग कुछ दिनके लिए शान्तिनिकेतनमें रहे थे। इसका एक फल यह हुआ कि भजनोंमें रविबाबूके कुछ सुन्दर सुन्दर गीत दाखिल हुए। जब मैं शान्तिनिकितन गया और गांधीजीके परिवारमें शरीक हुआ, तब मैंने सुबहकी प्रार्थना शुरू की। वह थी महाराष्ट्रके संतोंकी परंपराकी प्रार्थना। उसमें मैंने अपनी रुचिके कुछ श्लोक बढ़ाये थे।

श्रीमद् राजचन्द्रके साथ गांधीजीका कुछ पत्रव्यवहार दक्षिण अफ्रीकासे हुआ था, जिसमें दोनोंने काफ़ीधर्मचर्चा की थी। अहमदाबाद आकर जब गांधीजीने कोचरबमें आश्रमकी स्थापना की, तब उन्होंने हमारी प्रार्थनामें राजचन्द्रजीके कुछ भजन ले लिये।

प्रार्थनाके बाद गांधीजी स्वयं राजचन्द्रका राजबोध पढ़कर सुनाते थे। उसके बाद गांधीजीने आश्रमवासी महाराष्ट्रीयोंके संतोषके लिए अपनी ही इच्छासे समर्थ रामदासका मनोबोध भी कुछ दिनके लिए चलाया था।

अहमदाबादमें आश्रमके स्थिर हो जानेके बाद गांधीजीने सुबहकी प्रार्थनामें से कुछ श्लोक कम करके उसको निश्चित रूप दिया। प्रात:स्मरणके तीन श्लोक रखे तो सही, किन्तु उनके बारेमें उन्होंने कहा कि "अद्वैत सिद्धान्तको मैं मानता हूँ, लेकिन 'तद् ब्रह्म निष्कलमहम् न च भूतसंघः' कहते संकोच होता है। क्योंकि उतनी साधना अभी पूरी नहीं हुई है।"

कोचरबसे आश्रम साबरमतीके किनारे वाड़जके पास गया, तब संगीताचार्य श्री नारायणराव खरे आश्रममें आये। उनके साथ हिन्दुस्तानी संगीत और भजनोंकी समृद्धि आई। रामधुन भी आई।

पंडित खरे, मामा फड़के, श्री विनोबा और बाळकोबा भावे और मैं - इनके कारण महाराष्ट्रके संतकवियोंकी वाणी भी आश्रम-प्रार्थनामें शामिल हुई। विनोबा और मैं उपनिषद्के उपासक ठहरे। उपनिषद्-स्मरणके बिना हमारी प्रार्थना पूरी कैसे हो सकती ? लेकिन उपनिषद्के वचन प्रार्थनामें नहीं, बल्कि प्रार्थनाके बाद जो प्रवचन होता था उसमें काममें लिये जाते थे।

अफ्रीकाके दिनोंसे ही गांधीजीका नियम था कि जिस तरह आहारमें हरएकको उसके अनुकूल खुराक दी जानी चाहिये, उसी तरह प्रार्थनामें भी हरएकको उसकी रुचिका और श्रद्धाका आध्यात्मिक आहार मिलना चाहिये।* एक तमिळ भाईने अपने लड़के जब गांधीजीके सुपुर्द किये, तब गांधीजीने प्रार्थनामें एक तमिळ भजन शुरू किया। आश्रममें जब एक भी तमिळ लड़का नहीं

रहा, तब भी कई बरसों तक वह भजन नियमित रूपसे गाया जाता था। उसके पीछे स्व. श्री मगनलालभाईकी श्रद्धा थी।

भारतवर्षके भक्तोंने अनादि कालसे भक्तिके स्तोत्र लिखे हैं। रामायण, महाभारत, भागवत और अन्य पुराणोंमें जगह जगह ये स्तोत्र पाये जाते हैं। इनका कुछ स्वाद प्रार्थनामें लानेके लिए स्तोत्रराज मुकुन्दमालामें से, पांडवगीतामें से और शंकराचार्यकी मानी गई द्वादशपंजरीमें से मैंने कुछ श्लोक लिये।

जब स्वामी सत्यदेव कुछ समयके लिए आश्रममें रहने आये, तब तुलसी-रामायणका पाठ शुरू हुआ।

मैंने आश्रममें गीतापाठ शुरू कर ही दिया था, लेकिन वह उच्चारण मात्र तक सीमित था। बच्चोंकी पढ़ाईमें दार्शनिक चर्चा नहीं लानी चाहिये, इस अभिप्रायसे मैं उनके सामने गीताका अर्थ करने नहीं बैठता था। लेकिन गांधीजीने भारपूर्वक कहा कि गीताके उपदेशका परिचय सबको बचपनसे ही हो जाय यह इष्ट है।

फिर हमने शामकी प्रार्थनाके साथ गीताके श्लोकोंका विवरण शुरू किया। कई लोगोंने गीताका वर्ग चलाया, लेकिन गीता पर अधिकसे अधिक ज़ोर दिया श्री विनोबाने। इस सारी प्रवृत्तिके कारण सारे आश्रम पर गीताके श्लोक कंठ करनेकी धुन सवार हो गई। आश्रमवासी शुद्ध उच्चारणसे और अच्छे स्वरमें अध्यायके पीछे अध्याय बोलने लगे। इसमें से गीतापाठका क्रम शुरू हो गया। रोज़ एक अध्यायका क्रम काफ़ी अरसे तक चला। इसके बाद दो सप्ताहमें सारी गीता पूरी होने लगी।

इससे एक कठिनाई पैदा हुई। हिन्दुस्तानमें अनेक जगह आश्रम खुल गये थे। चन्द आश्रम अपनी अपनी अलग प्रार्थना चलाते थे। चन्द लोगोंका आग्रह था कि गांधीजीके आश्रमकी ही प्रार्थना, उसीका समय और उसीका क्रम हर आश्रममें चलाया जाये। दो सप्ताहमें पूरी होनेवाली गीता किस दिन शुरू हो और किस दिन पूरी हो, इसका पता बिना लिखापढ़ी किये मालूम कैसे हो ? सन १९३० में यरवदा जेलमें मैंने गांधीजीके सामने सुझाव पेश किया

कि सारी गीता एक सप्ताहमें पूरी की जाये। गांधीजीने जेलसे बाहरके सबकी राय पूछी। बहुतोंने इसका विरोध करते हुए यह दलील दी कि समय बहुत जायेगा। दूसरा सुझाव किया गया कि सुबह शाम मिलकर उस दिनकी गीता पूरी की जाये। आखिरकार स्वयं गांधीजीने निश्चय किया कि गीतापाठ एक सप्ताहमें ही पूरा हो। अध्यायोंके विभाग श्री विनोबाने तैयार किये। तबसे यह सिलसिला आश्रममें अबाधित चलता आया है। सोमवार पू. बापूजीके मौनका दिन होनेसे उस दिन उनका प्रवचन नहीं हो सकता था, इसलिए सोमवारके लिए ज़्यादा श्लोक रखे गये।

हमारी प्रार्थनामें उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कुरान और संत-साहित्य, सबमें से चुनाव किया गया था। लेकिन प्रारंभ वेदवाणीसे होना चाहिये यह मेरा आग्रह था। इसलिए मंत्रोपनिषद् ईशावास्यमें से पहला मंत्र लिया गया। गांधीजीको यह मंत्र इतना पसन्द आया कि उस पर उन्होंने अनेकों सभाओंमें प्रवचन किये। और सुबह व शाम दोनों वक़्तकी प्रार्थनाके प्रारंभमें उसे स्थान दिया।

प्रार्थनाके भकतोंमें श्री महादेवभाईको भी गिनना चाहिये। उनके आग्रहसे 'अकल कला खेलत नर ज्ञानी' जैसे भजन आ गये। पू0 बापूजीने स्वयं 'वृक्षनसे मत ले' जैसे भजन पसन्द करके दिये। 'वैष्णव जन' का भजन तो उनका प्रिय और आदर्श भजन था ही। हरएक महत्त्वके मौक़े पर 'वैष्णव जन' गाकर ही वे कार्यका प्रारंभ करते थे। 'हो रसिया, मैं तो शरण तिहारी' जैसे दो तीन भजन श्री किशोरलालभाईकी देन हैं।

आश्रमके एकादश व्रतोंका श्लोक श्री विनोबाने बनाया। उसीका गुजराती श्री जुगतरामभाईने बना दिया और हिन्दी श्री सियारामशरणजी गुप्तने।

आश्रममें जब विद्यार्थियोंके लिए एक शाला खोल दी गई, तब उस विद्यामंदिरके लिए एक अलग प्रार्थनाकी ज़रूरत मालूम हुई। उसके लिए मैंने अपने प्रिय श्लोक निश्चित किये। 'असतो मा सद् गमय' की भव्य प्रार्थना विद्यालयके लिए आवश्यक थी ही। साथ साथ आदर्श भक्त विद्यार्थी ध्रुवका वचन भी बालकोंकी प्रार्थनामें रखना सब तरहसे उचित था। 'योऽन्त:प्रविश्य' वाले श्लोकका माहात्म्य

गायत्री मंत्रसे कम नहीं है। 'ॐ सह नाववतु' का शान्तिपाठ तो गुरु-शिष्योंके लिए ही है। वह भी लिया गया। सर्व-धर्म-सम-भावका बीज 'विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको' वाले श्लोकमें पाया जाता है। 'एकम् सत्, विप्रा बहुधा वदन्ति' वाले वेदमंत्रमें वही भाव है, लेकिन वह प्रार्थना-स्वरूप न होनेसे नहीं लिया गया। उसे भजनावलिकी प्रस्तावनामें स्थान मिला।

आश्रममें जब स्त्रियोंके लिए एक स्वतंत्र वर्ग चलानेका निश्चय हुआ और बापूजी स्वयं उसे लेने लगे, तब स्त्रीवर्गके लिए एक अलग प्रार्थना गांधीजीने पसन्द की। उसका विवेचन स्त्रीवर्गके लिए लिखे हुए बापूके पत्रोंमें काफ़ी आ गया है।

गांधीजी जब वर्धामें रहने लगे, तब एक जापानी बौद्ध साधु प्रार्थनाके पहले अपने कुछ मंत्र बोलता था और चमड़ेका एक पंखा बजाता था। युद्ध शुरू होते ही सरकार उसे गिरफ़्तार करके ले गई। उस साधुके स्मृतिरूप गांधीजीने उसके जापानी मंत्रका स्वीकार कर लिया और उसे प्रार्थनाके पहले ही रखा।

श्री अब्बास तैयबजीकी लड़की कुमारी रैहाना तैयबजी जब थोड़े दिनोंके लिए गांधीजीके साथ रहने आयी, तब उसने अपने मधुर कंठके भजनोंके साथ स्थितप्रज्ञके संस्कृत श्लोक भी शुद्ध उच्चारण और गंभीर भावके साथ गाकर लोगोंको आश्चर्यचकित किया; और बापूसे इजाज़त लेकर लोगोंको कुरानके 'अल् फ़ातिहा' और 'सूरत-इ-इख़लास' सिखाये। इस तरह सनातनी और बौद्ध धर्मके साथ इस्लामका भी अंतर्भाव हुआ।

हिन्दुस्तानी भजनोंमें नज़ीर आदि मुस्लिम कवियोंके भजन पहलेसे थे ही।

और ख़िस्ती भजनोंका संग्रह तो गांधीजीने स्वयं दक्षिण अफ्रीकासे ही किया था। उसमें से Lead Kindly Light वाला भजन बापूको इतना प्रिय था कि उन्होंने हिन्दुस्तान आते ही गुजरातके अनेक कवियोंके पास उसके अनुवाद माँगे। उन सब अनुवादोंमें बापूजीको श्री नरसिंहराव दिवेटियाका 'प्रेमळ ज्योति' वाला अनुवाद विशेष भाया और उसीको उन्होंने भजन-संग्रहमें ले लिया।

आश्रममें कोई पारसी बहन या भाई आकर रहे नहीं, इसलिए उनके भजनोंका या मंत्रोंका हमारी प्रार्थनामें अभाव था। सन १९४२ के आज़ादीके आन्दोलनके कारण उस समयकी अंग्रेज सरकारने जब गांधीजीको गिरफ़्तार करके पूनाके आगाखान महलमें रखा, तब प्रसंगवशात् डॉ० गिल्डरको भी वहाँ रखना पड़ा। गांधीजीने तुरन्त उनको अपनी प्रार्थनामें खींच लिया और उनके पाससे जरथुष्ट्री गाथाओंमें से प्रार्थना माँगी | उस चर्चाके फलस्वरूप एक जरथुष्ट्री गाथा भी हमारी प्रार्थनाका एक अंग बन गई।

मुझे याद नहीं कि सिंधी भजन कब और कैसे आया। उससे अच्छे कई भजन उस भाषामें हैं, जिनको भजनावलिमें स्थान मिलना चाहिये।

धुनोंमें हिंदी और महाराष्ट्री धुन ही अधिकांश हैं। अबकी बार एक कर्णाटकी धुनने भी स्थान पाया है।
कठिन शब्दोंका कोश कभी भी संतोषकारक नहीं हो सका है। अगली आवृत्तिमें उसकी तरफ़ ध्यान देनेका संकल्प है।

प्रार्थना चलानेवाले गायकोंकी सुविधाके लिए अबकी बार भजनावलिमें भजनोंकी रागवार अनुक्रमणिका भी दी है, जिससे आसानीसे ढूँढ़ा जा सकता है कि भजनावलिमें अमुक रागके भजन कौनसे हैं और वे कहाँ हैं।

....

* 'मंगल-प्रभात' (व्रत-विचार) में सर्व धर्म-समभाववाले दो प्रकरण देखिये ।

भजनावलिके विकासका जो क्रम ऊपर बताया है, उससे एक बात स्पष्ट हो जायगी कि किसी भी भजन-साहित्यमें से अच्छेसे अच्छे सब भजन इकट्ठा करनेका या सबकी सब प्रान्तीय भाषाओंमें से भजन चुननेका यहाँ तनिक भी प्रयत्न नहीं हुआ है, हालाँकि ऐसा करनेका इरादा शुरूसे ही दो तीन आश्रमवासियोंका था और गांधीजीको भी वह बात पसन्द थी।

इस भजन-संग्रहमें आश्रम-जीवनका ही यथार्थ प्रतिबिम्ब है। आश्रमका जीवन जैसा जैसा समृद्ध होता गया, वैसा वैसा यह भजन-संग्रह भी बढ़ता गया।

गांधीजीने कई बार सूचना की थी कि अगर आश्रमके सिद्धान्तोंके खिलाफ़ कोई भाव किसी भजनमें आते हों, तो उस भजनको भजनावलिमें से निकाल दिया जाय। मसलन् , मृत्युका डर दिखानेवाले भजन हमारे कामके नहीं हैं। वैराग्यका उपदेश करनेके लिए स्त्रीजातिकी निन्दा करनेवाले कोई भजन हों, तो वे भी हमारे कामके

नहीं हैं। जिन भजनोंमें भक्तिभाव नहीं है या जो भजन कृत्रिम हैं और कविका सारा प्रयत्न अनुप्रासादि शब्दालंकार सिद्ध करनेका ही हो, ऐसे भजन भी पसन्द नहीं करने चाहिये। भक्ति बढ़ानेके लिए जो भजन लालच ही दिखाते हैं, वे भजन भी शंकास्पद समझे जाने चाहिये।

सुबहकी प्रार्थनामें अनेक देव-देवियोंकी उपासना आती है। इसका विरोध भी अनेक आश्रमवासियोंने किया था। गांधीजीने कहा कि ये सब श्लोक एक ही परमात्माकी उपासना सिखाते हैं। नाम-रूपकी विविधता हमें न केवल सहिष्णुता सिखाती है, बल्कि हमें सर्व-धर्म-सम-भावकी ओर ले जाती है। यह विविधता हिन्दू धर्मकी खामी नहीं किन्तु खूबी है। ऐसे आध्यात्मिक संस्कारसे ही हम सर्व-धर्म-सम-भावका सिद्धान्त आसानीसे ग्रहण कर सके हैं। इसके बारेमें गांधीजीने 'व्रत-विचार' या 'मंगल-प्रभात' में विस्तारके साथ लिखा है।

एक दिन गांधीजीने मुझे पूछा, "आज आश्रममें अधिकांश लोग हिन्दू ही हैं। अगर ऐसा न होकर मुसलमान या ईसाई अधिक होते तो प्रार्थनाका स्वरूप कैसा होता ?" मैंने

कहा, "जिस तरह हमने भिन्न-भिन्न पंथके श्लोक लिये हैं, वैसे उनकी प्रार्थनाके हिस्से भी लिये होते।" गांधीजीने कहा, "इतना ही नहीं; गीताकी जगह हम कुरान शरीफ़ या बाइबल रख देते। हमारा आश्रम किसी एक धर्मका नहीं है। सब धर्मोंका है। सबकी सहूलियत जिसमें अधिक हो वैसा ही वायुमंडल हमें रखना चाहिये। सर्व-धर्म-सम-भावका यही अर्थ है।"

१-१-'५. काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

महात्माजीकी प्रस्तावना

संग्राहकका प्रास्ताविक

संपादककी प्रस्तावना : भजनावलिका विकास

नित्यपाठका क्रम

सुबहकी प्रार्थना

१. बौद्ध मंत्र

दो मिनिटका मौन

२. ईशावास्य

३. प्रात:स्मरण

४. एकादश व्रत

५. कुरानकी आयतें - अल फ़ातिहा और सूरा अल-इख़लास

६. जरथोस्ती गाथा

७. भजन

८. धुन

९. गीतापाठ

शामकी प्रार्थना

१. बौद्ध मंत्र ....

दो मिनिटका मौन

२. ईशावास्य .....

३. य ब्रह्मा ....

४. स्थितप्रज्ञ-लक्षण

५. एकादश व्रत

६. कुरानकी आयतें - अल् फ़ातिहा और सूरा अल-इख़लास ....

७. जरथोस्ती गाथा

८. भजन ....

९. धुन ....

विद्या-मंदिरकी प्रार्थना

स्त्रीवर्गकी प्रार्थना ....

उपनिषत्-स्मरण ....

पाण्डव-गीतासे ....

मुकुन्दमालासे ....

द्वादश-पंजरिका-स्तोत्रसे

रामचरितमानससे ...

गीतापाठका क्रम ....

भजनोंकी रागवार अनुक्रमणिका

भजनोंकी वर्णानुक्रमणिका

कठिन शब्दोंका कोश

नित्यपाठ

हरि: ॐ ।

ईशावास्यम् इदम् सर्वम्

यत् किं च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा:

मा गृध: कस्यस्विद् धनम् ॥

प्रात:स्मरणम्

प्रात: स्मरामि हृदि संस्फुरद् आत्म-तत्त्वम्

सत्-चित्-सुखं परमहंस-गतिं तुरीयम् ।

यत् स्वप्न-जागर-सुषुप्तम् अवैति नित्यम्

तद्ब्रह्म निष्कलम् अहं न च भूत-संघ: ॥ १ ॥

नित्यपाठ

इस जगत्में जो कुछ भी जीवन है, वह सब ईश्वरका बसाया हुआ है। इसलिए ईश्वरके नामसे त्याग करके तू यथाप्राप्त भोग किया कर। किसीके धनकी वासना न कर

प्रात : कालकी प्रार्थना

१. मैं सवेरे अपने हृदयमें स्फुरित होनेवाले आत्म-तत्त्वका स्मरण करता हूँ। जो आत्मा सच्चिदानंद (सत् , ज्ञान और सुखमय) है, जो परमहंसोकी अन्तिम गति है, जो चतुर्थ अवस्थारूप है, जो जाग्रति, स्वप्न और निद्रा तीनों अवस्थाओंको हमेशा जानता है और जो शुद्ध ब्रह्म है, वही मैं हूँ - पंचमहाभूतोंसे बनी हुई यह देह मैं नहीं हूँ |

प्रातर् भजामि मनसो वचसाम् अगम्यम्
वाचो विभान्ति निखिला यद् अनुग्रहेण ।
यन् 'नेति नेति' वचनैर् निगमा अवोचुस्
तं देव-देवम् अजम् अच्युतम् आहुर् अग्यम् ॥ २ ॥

प्रातर् नमामि तमसः परम् अर्क-वर्णम्
पूर्णं सनातन-पदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन् इदं जगद् अशेषम् अशेष-मुर्तौ
रज्ञवां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥ ३ ॥

समुद्र-वसने ! देवि ! पर्वत-स्तन-मण्डले ! ।
विष्णु-पत्नि ! नमस् तुभ्यम्; पाद-स्पर्श क्षमस्व मे ॥ ४ ॥

२. जो मन और वाणीके लिए अगोचर है, जिसकी कृपासे चारों तरहकी वाणी प्रकट होती है, वेद भी जिसका वर्णन 'वह यह नहीं, यह नहीं' कहकर ही कर सके हैं, उस ब्रह्मका सवेरे उठकर मैं भजन करता हूँ । ऋषियोंने उसे 'देवोंका देव', 'अजन्मा', 'पतनरहित' और 'सबका आदि' कहा है ।

३. मैं सवेरे उठकर उस सनातन पदको नमन करता हूँ, जो अन्धकारसे परे है, सूर्यके समान है, पूर्ण पुरुषोत्तम नामसे पहचाना जाता है और जिसके अनन्त स्वरूपके भीतर यह सारा जगत् उसी तरह दिखाई देता है, जिस तरह रस्सीमें साँप ।

४. समुद्रोंक वस्त्रवाली, पर्वतोंके स्तनवाली, विष्णुकी पत्नी, हे पृथ्वीमाता ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ । मैं तुझे अपने पैरसे छूता हूँ; मेरे इस अपराधको क्षमा कर |

या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्र-वस्त्रावृता
या वीणा-वरदण्ड-मण्डित-करा या श्वेत-पद्मासना ।
या ब्रह्माऽच्युत-शंकर-प्रभृतिभिर् देवैः सदा-वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष-जाड्यापहा ॥ ५ ||

वक्र-तुण्ड ! महाकाय ! सूर्य-कोटि-सम-प्रभ ! ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव ! शुभ-कार्येषु सर्वदा ॥ ६ |

गुरुर् ब्रह्मा, गुरुर् विष्णुर्, गुरुर् देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७ ॥

५. जो कुन्द, चन्द्र या बरफ़के हारके समान गौरवर्ण है, जिसने सफ़ेद वस्त्र पहने हैं, जिसके हाथ वीणाके सुन्दर दण्डसे सुशोभित हैं, जो सफ़ेद कमल पर बैठी है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देव हमेशा जिसकी स्तुति करते हैं, समस्त अज्ञान और जड़ताका जो नाश करनेवाली है, वह देवी सरस्वती मेरी रक्षा करे |

६. बाँके मुँहवाले, विशाल शरीरवाले, करोड़ों सूर्यकीसी कान्तिवाले, हे सिद्धिविनायक ! मेरे सभी शुभ कर्मोंमें मुझे निर्विघ्न करो ।

७. गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महादेव हैं; गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं; उन श्रीगुरुको मैं नमस्कार करता हूँ ।

शान्ताकारं भुजग-शयनं पद्म-नाभं सुरेशम्
विश्वाधारं गगन-सदृशं मेघ-वर्ण शुभाङगम् ।
लक्ष्मी-कान्तं कमल-नयनं योगिभिर् ध्यान-गम्यम्
वन्दे विष्णु भव-भय-हरं सर्व-लोकैक-नाथम् ॥८॥

कर-चरण-कृतं वाक्-कायजं कर्मजं वा
श्रवण-नयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितम् अविहितं वा सर्वम् एतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे ! श्रीमहादेव ! शम्भो ! ॥९॥

८. संसारके भयका नाश करनेवाले, सब लोकोंके एकमात्र स्वामी श्री विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ । उनका आकार शान्त है, वे शेषनाग पर लेटे हैं, उनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है, वे सब देवोंके स्वामी हैं, वे सारे विश्वके आधार हैं, वे आकाशकी तरह अलिप्त हैं और उनका वर्ण मेघकी तरह श्याम है, वे कल्याणकारी गात्रवाले हैं, सब सम्पत्तिके स्वामी हैं, उनके नेत्र कमलके समान हैं । योगी उन्हें ध्यान द्वारा ही जान सकते हैं।

९. हाथसे या पैरसे, वाणीसे या शरीरसे, कानसे या आँखसे मैं जो भी अपराध करूँ, वह कर्मसे उत्पन्न हो या केवल मानसिक हो, अमुक करनेसे हो या अमुक न करनेसे हो, हे करूणा-सागर, कल्याणकारी महादेव, उन सबके लिए तू मुझे क्षमा कर । मेरे हृदयमें और जीवनमें तेरा जयजयकार हो ।

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःख-तत्पानाम् प्राणिनाम् आर्ति-नाशनम् ॥ १०।

स्वस्ति प्रजाभ्य ; परिपालयन्ताम्
न्याय्येन मार्गं महीं महीशाः ।
गो-ब्राह्मणेभ्यः शुभम् अस्तु नित्यम्;
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ११ |

नमस् ते सते ते जगत्-कारणाय
नमस् ते चिते सर्व-लोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैत-तत्त्वाय मुक्ति-प्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय. ॥ १२ ॥

१०. अपने लिए न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्गकी इच्छा करता हूँ। मोक्ष भी मैं नहीं चाहता। मैं तो यही चाहता हूँ कि दुःखसे तपे हुए प्राणियोंकी पीड़ाका नाश हो।

११. प्रजाका कल्याण हो, राज्यकर्ता लोग न्यायके मार्गसे पृथ्वीका पालन करें, (खेती और ज्ञान-प्रसारके लिए) गाय और ब्राह्मणोंका सदा भला हो और सब लोग सुखी बनें।

१२. जगत्के कारणरूप, सत् स्वरूप हे परमेश्वर ! तुझे नमस्कार। सारे विश्वके आधाररूप हे चैतन्य ! तुझे नमस्कार | मुक्ति देनेवाले हे अद्वैत-तत्त्व! तुझे नमस्कार | हे शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म ! तुझे नमस्कार।

त्वम् एकं शरण्यं त्वम् एकं बरेण्यम्
त्वम् एकं जगत्-पालकं स्व-प्रकाशम् |
त्वम् एकं जगत कर्तृ-पातृ-प्रहर्तृ
त्वम् एकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥ १३ ॥

भयानां भयं; भीषणं भीषणानाम्
गतिः प्राणिनां ; पावनं पावनानाम् |
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वम् एकम्
परेषां परं; रक्षणं रक्षणानाम् ॥ १४ ॥

वयं त्वां स्वरामो ; वयं त्वां भजामो
वयं त्वां जगत्-साक्षि-रूपं नमामः ।
सद् एकं निधानं निरालंबम् ईशम्
भवाम्भोधि-पोतं शरण्यं व्रजामः ॥ १५ ॥

१३. तू ही एक शरण लेने योग्य - आश्रयका स्थान है। तू ही एक वरणीय ह्न इच्छा करने लायक है। तू ही एक जगत्का पालन करनेवाला है और अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। तू ही एक इस सृष्टिको पैदा करनेवाला, पालनेवाला और इसका संहार करनेवाला है, और तू ही एक निश्चल और निर्विकल्प है।

१४. तू भयोंको भय दिखानेवाला है, भयंकरोंका भयंकर है। तू प्राणियोंकी गति है और पवित्र वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाला तू ही है। श्रेष्ठ स्थानोंका एकमात्र नियन्ता तू है। तू परसे भी पर है और रक्षकोंका भी रक्षक है।

१५. हम तेरा स्मरण करते हैं और तुझे भजते हैं; जगत्के साक्षीरूप तुझको हम नमस्कार करते हैं| हम सत् स्वरूप एकमात्र निधान, निरालम्ब और इस भव-सागरके लिए नौकारूप तेरी शरण लेते हैं।

एकादश व्रत

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह ।
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्वधर्म-समानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना ।
विनम्र व्रतनिष्ठासे ये एकादश सेव्य है ॥

कुर्आनसे प्रार्थना

पनाह

अऊज़ू बिल्लाहि मिनश् शैत्वानिर् रजीम् ॥

एकादश व्रत

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, अभय, सब धर्मोंके प्रति समानता, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण, इन ग्यारह व्रतोंका सेवन नम्रता-पूर्वक व्रतके निश्चयसे करना चाहिये ।

कुर्आनसे प्रार्थना

पनाह

शरण लेता हूँ मैं अल्लाहकी, पापात्मा शैतानसे बचनेके लिए ।

अल् फ़ातिहा

बिस्मिल्लाहिर् रह्मानिर् रहीम ।
अल् हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन ।
अर् रहमानिर् रहीम, मालिकि यौमिद् दीन ।
ईयाक नअबुदु व ईयाक नस्तईन ।
इह्दिनस् सिरातल् मुस्तक़ीम ।
सिरातल् लज़ीन अन् अम्त अलैहिम;
ग़ैरिल् मगजूबे अलैहिम वलज़्ज़ुआल्लीन ॥

आमीन

अल् फ़ातिहा

पहले ही पहल नाम लेता हूँ अल्लाहका, जो निहायत रहमवाला मेहरबान है ।

हर तरहकी स्तुति भगवानके ही योग्य है।

वह सारे विश्वका पालने-पोसनेवाला और उद्धारक, परम कृपालु, परम दयालु है। चुकौतीके दिनका वही मालिक है। (पाप-पुण्यका फल देनेका वक़्त उसीके अधीन है ।)

हम तुम्हारी ही आराधना करते हैं और तुम्हारी ही मदद माँगते हैं।

ले चलो हमको सीधी राह - उन लोगोंकी राह, जिन पर तुम्हारा कृपा-प्रसाद उतरा है;

उनके रास्ते नहीं, जिन पर तुम्हारी अप्रसन्नता हुई है या जो मार्ग भूले हुए हैं।

तथास्तु

सूरत अल-इखलास

बिस्मिल्लाहिर् रह्मानिर् रहीम ।

कुल हुवल्लाहु अहद् । अल्लाहुस्समद्

लम् यलिद्, वलम् यूलद्;

व लम् यकुल्लहू कुफ़वन् अहद्॥

सूरत अल-इखलास

पहले ही पहल नाम लेता हूँ अल्लाहका, जो निहायत रहमवाला मेहरबान है ।

(ऐ पैग़म्बर ! लोग तुम्हें खुदाका बेटा कहते हैं और तुमसे हाल खुदाका पूछते हैं, तो तुम उनसे)

कहो कि वह अल्लाह एक है और अल्लाह बेनियाज़ है, (उसे किसीकी भी ग़रज़ नहीं) न उसका कोई बेटा है और न वह किसीसे पैदा हुआ है । और न कोई उसकी बराबरीका है |

ज़रथोस्ती गाथा

मज़दा अत मोइ वहिश्ता
स्रवा ओस्चा श्योथनाचा वओचा ।
ता-तू वहू मनंधहा
अशाचा इषुदेम रतुतो
क्षमा का श्रथ्रा अहूरा फेरषेम्
वस्ना हइ श्येम् दाओ अहूम् ॥

बौद्ध मंत्र

नं म्यो हो रेंगे क्यो |

ज़रथोस्ती धर्मकी गाथा

ऐ होरमज़्द, सर्वोत्तम दीन (धर्म) के क़लाम (शब्द) और कामोंके बारेमें मुझसे कह, ताकि मैं नेकीके रास्ते रहकर तेरी महिमाका गान करूँ | तू जिस तरह चाहे उस तरह मुझे आगे चला । मेरी ज़िन्दगीको ताज़गी बख़्श और मुझे स्वर्गका सुख दे । (गांधीजीका अनुवाद)

बौद्ध मंत्र

सब बुद्धों को नमस्कार ।

सायंकालकी प्रार्थना

यं ब्रह्मा-वरुणेन्द्र-रुद्र-मरूत: स्तुन्वन्ति दिव्यै: स्तवैर्
वेदै: सांग-पद-क्रमोपनिषदैर् गायन्ति यं सामगा: ।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदु: सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम: ॥

स्थितप्रज्ञ-लक्षणानि

अर्जुन उवाच :
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ! ।
स्थित धी: किं प्रभाषेत किम् आसीत व्रजेत किमू ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच :
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ।
आत्मगन्येवात्मना तुष्ट: स्थितप्रज्ञस् तदोच्यते ॥ २ ॥

सायंकालकी प्रार्थना

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुत् दिव्य-स्तोत्रोंसे जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदका गान करनेवाले मुनि अंग, पद, क्रम और उपनिषद्के साथ वेदमंत्रोंसे जिसकी स्तुति करते हैं, योगीजन समाधि लगाकर परमात्मामें लीन मन द्वारा जिसके दर्शन करते हैं तथा देवता और दैत्य जिसकी महिमाका पार नहीं पाते, उस परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

स्थितप्रज्ञके लक्षण

अर्जुन बोले :

१. है केशव ! स्थितप्रज्ञ या समाधिस्थके लक्षण क्या है ? स्थितप्रज्ञ किस तरह बोलता, बैठता और चलता है ?

श्रीभगवान बोले :

२. हे पार्थ ! जब मनुष्य मनमें पैदा होनेवाली सभी कामनाओंको छोड़ देता है और आत्मा द्वारा आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।

दुःखेष्वनुद्विग्न-मनाः सुखेषु विगत-स्पृहः ।
वीत-राग-भय-क्रोधः स्थितधीर् मुनिर् उच्चते ॥ ३ ॥

३. जो दु:खसे दुखी नहीं होता, सुखकी चाह नहीं करता और जो राग, भय और क्रोधसे रहित होता है, वह स्थिरबुद्धि मुनि कहलाता है ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस् तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ४ ॥

४. जो सब कहीं निरासक्त रहकर शुभ या अशुभ पाने पर न खुश होता है, न रंज मनाता है, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्यस् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५ ॥

५. जिस तरह कछुआ सब ओरसे अपने अंगोको सिकोड़ लेता है, उसी तरह जब पुरुष अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे अलग कर लेता है, तब वह स्थिरबुद्धि कहा जाता है ।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन: ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ६ ॥

६. जब देहधारी निराहारी रहता है, तब उसके विषय ढीले पड़ जाते हैं, पर रस नहीं छूटता; रस तो परमात्माका साक्षात्कार होने पर ही छूटता है ।

यततो ह्यपिकौन्तेय ! पुरुषस्य विपश्चित: ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मन: ॥ ७ ॥

७. हे कुन्तीपुत्र ! ज्ञानी पुरुषके यत्नशील रहने पर भी इन्द्रियाँ इतनी मस्त होती है कि वे उसके मनको जबरदस्ती खींच ले जाती हैं ।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ८ ॥

८. इन सब इन्द्रियोंको वशमें रखकर योगीको चाहिये कि वह मुझमें तन्मय होकर रहे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं उसकी बुद्धि स्थिर है ।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस् तेषूपजायते ।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥ ९ ॥

९. विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषको उन विषयोंमें आसक्ति पैदा होती है । फिर आसक्तिसे कामना पैदा होती है और कामनासे क्रोध पैदा होता है ।

क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृति-विभ्रमः ।
स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ १० ॥

१०. क्रोधसे मूढ़ता पैदा होती है, मूढ़तासे स्मृतिलोप होता है और स्मृतिलोपसे बुद्धि नष्ट होती है । और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मरेके बराबर है।

राग-द्वेष-वियुक्तैस् तु विषयान् इन्द्रियैश् चरन् ।
आत्मवश्यैर् विधेयात्मा प्रसादम् अधिगच्छति ॥ ११ ॥

११. लेकिन जिस मनुष्यका मन उसके वशमें होता है और जिसकी इन्द्रियाँ राग-द्वेष-रहित होकर उसके अधीन रहती हैं, वह मनुष्य इन्द्रियोंसे काम लेता हुआ भी चित्तकी प्रसन्नता पा जाता है ।

प्रसादे सर्व-दुःखानाम् हानिर् अस्योपजायते ।
प्रसन्न-चेतसो ह्यासु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ १२ ॥

१२. चित्तकी प्रसन्नतासे उसके सब दुःख मिट जाते हैं और प्रसन्न मनुष्यकी बुद्धि तुरन्त ही स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिर् अयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयत: शान्तिर् अशान्तस्य कुत: सुखम् ॥ १३ ॥।

१३. जिसमें समत्व नहीं, उसमें विवेक नहीं, भक्ति नहीं| और जिसमें भक्ति नहीं, उसे शान्ति नहीं । और जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँसे आये ?

इन्द्रियाणां हि चरताम् यन्मनोऽनुविधीयते ।
तद् अस्य हरति प्रज्ञाम् वायुर् नावम् इवाम्भसि ॥ १४ ॥

१४. जिसका मन विषयोंमे भटकती हुई इन्द्रियोंके पीछे दौड़ता है, उसका मन उसकी बुद्धिको उसी तरह चाहे जहाँ खींच ले जाता है, जिस तरह हवा नावको पानीमें खींच ले जाती है ।

तस्माद् यस्य महाबाहो ! निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ १५ ॥

१५. इसलिए, हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियाँ सब तरफ़से विषयोंसे हटकर उसके वशमें आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है ।

या निशा सर्व-भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ १६ ॥

१६. जब सब प्राणी सोये होते हैं, तब संयमी पुरुष जागता है । जहाँ लोग जागते होते हैं, वहाँ ज्ञानवान मुनि सोता है।

आपूर्यमाणम् अचल-प्रतिष्ठ
समुद्रम् आपः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिम् आप्नोति न कामकामी ॥ १७ ॥

१७. नदियोंसे लगातार भरा जाते हुए भी समुद्र जिस तरह अचल रहता है, उसी तरह जिस मनुष्यके सारे काम-भोग उसके पास आते हैं, वही शान्ति पाता है, कामनाओंवाला मनुष्य नहीं ।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश् चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिम् अधिगच्छति ॥ १८ ॥

१८. सभी कामनायें छोड़कर जो मनुष्य इच्छा, ममता और अहंकार-रहित होकर विचरता है, वही शान्ति पाता है |

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ ! नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्याम् अन्तकालेऽपिब्रह्म-निर्वाणम् ऋच्छति ॥१९॥

१९. हे पार्थ ! इन्द्रिय-जय करनेवालेकी यही ब्राह्मी स्थिति है । इसे पाने पर मनुष्य मोहके वश नहीं होता, और मरते समय भी यही स्थिति बनी रहे, तो वह ब्रह्म-निर्वाण यानी मोक्ष पाता है।

[भगवद्गीता, २. ५४-७२]

विद्या-मन्दिरकी प्रार्थना

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतम् अस्तु । मा विद्विषावहै ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

ॐ असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर् गमय ।
मृत्योर् माऽमृतं गमय ॥ २ ॥

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचम् इमां प्रसुप्ताम्
संजीवयत्यखिल-शक्ति-धरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्त-चरण-श्रवण-त्वगादीन्
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ३ ॥

विद्या-मन्दिरकी प्रार्थना

१. वह (परमात्मा) हम दोनोंकी रक्षा करे । हम दोनोंका उपयोग करे । हम दोनों (गुरु-शिष्य) एकसाथ पुरुषार्थ करें । हमारी विद्या तेजस्वी हो । हम एकदूसरेका द्वेष न करें । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

२. (हे प्रभो !) मुझे असत्यसे सत्यमें ले जा; अँधेरेसे उजेलेमें ले जा; मृत्युसे अमरतामें ले जा ।

३. हे सर्वशक्तिमान ! जो तू मेरे हृदयमें प्रवेश करके अपने तेजसे मेरी सोई हुई वाणीको जगाता है; मेरे हाथ, पैर, कान, त्वचा वगैरा दूसरी इन्द्रियोंको और प्राणोंको सजीवन करता है; ऐसे हे भगवन् ! तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ।

विपदो नैव विपदः; संपदो नैव संपदः ;
विपद् विस्मरणं विष्णोः संपन् नारायण-स्मृतिः ॥ ४ ॥

४. विपत्तियाँ सच्ची विपत्ति नहीं और धन-दौलत सच्ची सम्पत्ति नहीं; विष्णुका विस्मरण ही विपत्ति है और नारायणका स्मरण ही सम्पत्ति है ।

विष्णुर् वा त्रिपुरान्तको भवतु वा ब्रह्मा सुरेन्द्रोऽथवा
भानुर् वा शश लक्षणो5थ भगवान् बुद्धो5थ सिद्धो5थवा ।
राग-द्वेष-विषार्ति-मोह-रहितः सत्त्वानुकंपोद्यतो
यः सर्वैः सह संस्कृतो गुणगणैस् तस्मै नमः सर्वदा ॥ ५ ॥

५. चाहे वह विष्णु हो या महादेव हो, ब्रह्मा हो या देवेश्वर इन्द्र हो, सूर्य हो या चन्द्र हो, भगवान् बुद्ध हो या महावीर हो; ह्न जो राग-द्वेषरूपी विषकी पीड़ासे आनेवाली मुर्च्छासे रहित है, जीवमात्रके प्रति अनुकम्पासे प्रेरित है और जो सब गुण-समूहोंसे संस्कारवान बना है, उसे निरन्तर नमस्कार है ।

स्त्रीवर्गकी प्रार्थना

गोविंद ! द्वारिकावासिन् ! कृष्ण ! गोपीजनप्रिय ! ।
कौरवे: परिभूतां माम् किं न जानासि केशव ॥१॥

१. हे द्वारिकावासी गोविंद, हे गोपियोंके प्रिय कृष्ण ! कौरवोंसे - दुष्ट वासनाओंसे - धिरी हुई मुझे तुम क्यों नहीं जानते ?

है नाथ ! हे रमानाथ ! व्रजनाथार्तिनाशन ! ।
कौरवार्णव-मग्नां माम् उद्धरस्व जनार्दन ॥ २ ॥

२. है नाथ, रमाके नाथ, व्रजनाथ, दुःखका नाश करनेवाले जनार्दन ! मैं कौरवरूपी समुद्रमें डूब रही हूँ । मुझे बचाओ ।

कृष्ण ! कृष्ण ! महायोगिन् ! विश्वात्मन् ! विश्वभावन ! ।
प्रपन्नां पाहि गोविंद ! कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥ ३ ॥

३. हे विश्वात्मन्, विश्वको उत्पन्न करनेवाले महायोगी कृष्ण, हे गोविंद ! कौरवोंके बीच हताश होकर मैं तुम्हारी शरण आई हूँ | मुझे बचाओ ।

धर्मं चरत, माऽधर्मम् ; सत्यं वदत, नानृतम् ।
दीर्घं पश्यत, मा ह्रस्वम ; परं पश्यत, माऽपरम् ॥ ४ ॥

४. धर्मका आचरण करो, अधर्मका नहीं; सत्य बोलो, असत्य नहीं; दीर्घ दृष्टि रखो, संकुचित नहीं; ऊपर (भगवान्की ओर) देखो, नीचे (दुनियाकी ओर) नहीं ।

अहिंसा सत्यम् अस्तेयम् शौचम् इन्द्रिय-निग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मम् चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन् मनुः ॥ ५ ॥

५. हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रताका पालन करना, इन्द्रियों पर काबू रखना; ह्व मनुने चारों वर्णोंके लिए थोड़ेमें यह धर्म कहा है।

अहिंसा सत्यम् अस्तेयम् अकाम-क्रोध-लोभता ।
भूत-प्रिय-हितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ ६ ॥

६. हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, विषयकी इच्छा न रखना, क्रोध न करना, लोभ न करना, परन्तु संसारके सभी प्राणियोंका प्रिय और हित करना ह्व यह सभी वर्णोंका धर्म है ।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर् नित्यम् अद्वेष-रागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस् तं निबोधत..॥ ७ ॥

७. विद्वानोंने, सन्तोंने और सदा राग-द्वेषसे मुक्त वीतराग पुरुषोंने जिसका सेवन किया है और जिसे हृदयने मान लिया है, वही धर्म है । उसे जानो ।

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वम्, श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत्   ॥ ८॥

८. धर्मका यह रहस्य सुनो और सुनकर हृदयमें धारण करो; जिसे अपने लिए बुरा समझते हो, उसे दूसरोंके लिए मत करो ।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुकतं ग्रन्थकोटिभि: ।
परोपकार: पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥ ९ ॥

९. करोड़ों ग्रंथोंमें जो कहा गया है, उसे मैं आधे श्लोकमें कहूँगा; दूसरोंका भला करनेसे पुण्य होता है और बुरा करनेसे पाप ।

आदित्य-चन्द्रावनिलोऽनलश्च
द्योर् भूमिर् आपो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये
धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ १० ॥

१०. सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, दिन और रात, साँझ और सवेरा और स्वयं धर्म मनुष्यके आचरणको जानते हैं; यानी मनुष्य अपना कोई विचार या कर्म इनसे छिपा नहीं सकता ।

मूकं करोति वाचालं, पंगु लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥ ११ ॥

११. जिसकी कृपा गूँगेको वक्ता बनाती है और लँगड़ेको भी पहाड़ लाँधनेकी शक्ति देती है, उस परमानन्द माधव को मैं वन्दन करता हूँ ।

उपनिषत्-स्मरणम्

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

तत् त्वं पूषन् ! अपावृणु सत्य-धर्माय दृष्टये ॥१॥

[ईश, १५]

१. सोनेकी तरह चमकीले ढक्कनसे सत्यका मुँह ढँका हुआ है। हे पूषन् ! (जगत्का पोषण करनेवाले भगवान्!) सत्यकी खोज करनेवाले मुझे सत्यका मुँह दिखाई पड़े, इसके लिए तुम वह ढककन हटा दो । सारे प्रलोभनोंको दूर करो।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् ।
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणम् एनो
भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम ॥ २ ॥

[ईश, १८]

२. सब मार्गोंके जाननेवाले हे अग्निदेव ! जिस रीतिसे हमें (अपने) ध्येयकी (निश्चित) प्राप्ति हो, उस रीतिसे तुम हमें अच्छे रास्ते ले चलो। हमारे कुटिल पापोंके साथ लड़ो (और उन्हें मिटा दो)। हम तुम्हें बार-बार नमस्कार करते हैं ।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यम् एत:
तौ संपरीत्य विविनक्ति धीर: ।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते ।
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥ ३ ॥

[कठ, १.२.२]

३. श्रेय (आत्माका कल्याण) और प्रेय (लौकिक सुख) दोनों मनुष्यके सामने आकर खड़े रहते हैं | चतुर व्यक्ति दोनोंकी उचित परीक्षा करके उनके चुनावमें विवेक से काम लेता है। धीमान् पुरुष प्रेयके मुक़ाबले श्रेयको ही पसन्द करता है । मूर्ख आदमी प्रेयको योगक्षेम (दुनियवी लाभ-रक्षा) का साधन समझकर उसे अपनाता है ।

सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यद् इच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॐ इत्येतत् ॥ ४ ॥

[कठ, १.२.१५]

४. सब वेद जिस पदका प्रतिपादन करते हैं, सब तप (अन्तिम साध्यके रूपमें) जिस पदकी घोषणा करते हैं, जिस पदकी चाहसे (मुमुक्षु) ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुम्हें थोड़ेमें कहता हूँ ह्न वह पद है ॐ ।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथम् एव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहम् एव च ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि हयान् आहुर् विषयांस् तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम् भोक्तेत्याहुर् मनीषिणः ॥ ६ ॥

५-६. समझो कि आत्मा रथ पर सवार लड़वैया है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े कहे जाते हैं और (पाँच) विषय उनके गोचर मैदान हैं। ज्ञानी लोग कहते हैं कि मन और इन्द्रियोंके साथ जुड़ा हुआ आत्मा (इन विषयोंको) भोगनेवाला है ।

विज्ञानसारथिर् यस् तु मनःप्रग्रहवान् नरः |
सोऽध्वनः पारम् आप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ७ ॥
[कठ, १.३.३,४,९]

७. जिस मनुष्यका बुद्धिरूपी (होशियार) सारथि हो और मनरूपी लगाम पर जिसका क़ाबू हो, वही (इस संसाररूपी) मार्गको तय करता है, रास्तेकी आखिरी मंजिलको पहुँचता है । वही विष्णुका श्रेष्ठ पद है ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्ग पथस् तत् कव्यो वदन्ति || ८ ॥
[कठ, १.३.१४]

८. उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषोंको पाकर उनसे ज्ञान प्राप्त कर लो । ज्ञानी कहते हैं कि जिस तरह उस्तुरेकी तीखी धार पर चलना कठिन है, उसी तरह इस विकट मार्ग पर चलना कठिन है ।

अग्निर् यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस् तथा सर्व-भूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश् च ॥ ९ ॥

[कठ, ३.२.९]

९. जिस तरह जगत्में व्याप्त एक ही अग्नि (अपना स्वरूप बनाये रखकर) अलग-अलग पदार्थोंकी संगतिसे उन उन रूपोंको धारण करता है, उसी तरह सर्व भूतोंके अन्दर रहनेवाला अंतर्यामी एक होते हुए भी हरएक रूपधारीके साथ उस उस रूपका बनता है और उनके बाहर (अलिप्त) भी रहता है ।

वायुर् यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस् तथा सर्व-भूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश् च ॥ १० ॥

१०. जिस तरह एक ही वायु जगत्में प्रवेश करके दुनियाके अलग-अलग पदार्थोंके सम्बन्धमें आकर उन उन आकारोंको धारण करता है, उसी तरह सर्व भूतोंके अंदर रहनेवाला अन्तर्यामी आत्मा एक होते हुए भी हरएक रूपधारीके साथ उस उस रूपका बनता है और उनके बाहर अलिप्त भावसे भी रहता है ।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्
न लिप्यते चाक्षुषैर् बाह्यदोषैः ।
एकस् तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

११. सब लोकोंका नेत्ररूप सूर्य जिस तरह साधारण नेत्रोंके बाह्य दोषोंसे अछूता रहता है, उसी तरह सब भूतोंके अंदर रहनेवाला एक आत्मा अलिप्त बाह्य होनेसे दुनियवी दुःखोंसे लिप्त नहीं होता ।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
एकं रूप बहुधा य: करोति ।
तम् आत्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्
तेषां सुखं शाश्वतं; नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

१२. जो धीमान लोग एक, स्वायत्त, सब भूतोंमें व्याप्त, (अपने) एक ही स्वरूपको अनेक तरहसे बनानेवाले (परमेश्वर) को अपनेमें मौजूद पाते हैं, उन्हींको शाश्वत सुख मिलता है, दूसरोंको नहीं ।

नित्योऽनित्यानां चेतनश् चेतनानाम्
एको बहूनां यो विद्धाति कामान् ।
तम् आत्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास् ।
तेषां शान्ति: शाश्वती ; नेतरेषाम् ॥ १३ ॥
[कठ, ३.२. १.-१३]

१३. जो धीमान लोग सब अनित्य पदार्थोंमें पाये जानेवाले एक, नित्य और सभी चेतन पदार्थोंको चेतना देनेवाले एवं खुद एक होकर अनेकोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले (परमेश्वर) को अपनेमें देखते हैं, उन्हींको शाश्वत शान्ति मिलती हैं, दूसरोंको नहीं ।

न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्र-तारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति, कुतोऽयम् अग्निः ?
तम् एव भान्तम् अनुभाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति ॥ १४ ॥

[कठ, ३.२.१५]

१४. वहाँ न सूरज चमकता है, न चाँद, न तारे; ये बिजलियाँ भी वहाँ अपना उजेला नहीं पहुँचा पातीं; तो फिर वहाँ इस अग्निकी पैठ कहाँ ? जिसके प्रकाशकी बदौलत (सूरज, चाँद, तारे वगैरा) सभी पदार्थ प्रकाश पाते हैं, उसके तेजसे यह सब साफ़-साफ़ प्रकाशित होता है।

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ १५ ॥

१५. जो शान्त और ज्ञानी पुरुष तप और श्रद्धापूर्वक भिक्षा-वृत्तिसे (अपरिग्रहसे) अरण्यमें रहते हैं, वे पापरहित होकर सूर्यद्वारसे उस जगह जाते हैं, जहाँ वह प्रसिद्ध अविकारी और अविनाशी पुरुष है ।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान्
ब्राह्मणो निर्वेदम् आयान् 'नास्त्यकृत: कृतेन' |
तद्विज्ञानार्थ स गुरुम् एवाभिगच्छेत्
समित्-पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्म-निष्ठम् ॥ १६ ॥
[मुंडक, १.३.११, ११]

१६. (सकाम) कर्मोंसे मिलनेवाले स्वर्गादि लोकोंको क्षणिक समझकर ब्रह्मके जिज्ञासु ब्राह्मणको उनके प्रति वैराग्ययुक्त बनना चाहिये, (क्योंकि) नित्यकी प्राप्ति कभी अनित्यसे नहीं हो सकती । उसके लिए ब्रह्म-जिज्ञासुको हाथमें समिधा लेकर विद्वान्, ब्रह्मनिष्ठ गुरुके ही पास शिष्यभावसे जाना चाहिये ।

तस्मै स विद्वान् उपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्त-चित्ताय शमान्विताय |
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् || १७ ||

[मुंडक, १.२.१]

१७. इस तरह विधिपूर्वक आये हुए, शान्तचित्त, शम-दमादि गुणोंसे युक्त शिष्यको वह विद्वान् आचार्य उस ब्रह्मविद्याका ज्ञान कराता है, जिसके द्वारा सत्य-स्वरूप अव्यय पुरुषका (अर्थात् परमात्माका) ज्ञान होता है !

प्रणवो धनुः, शरो ह्यात्मा, ब्रह्म तल् लक्ष्यम् उच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यम् ; शरवत् तन्मयो भवेत् ॥ १८ ॥

[मुंडक, २.२.४]

१८. प्रणव (ॐकारका जप) धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा गया है | इसलिए जिस तरह बहुत सावधानीसे उस लक्ष्यको वेधकर बाण लक्ष्यमय हो जाता है (लक्ष्यमें घुस जाता है), उसी तरह ब्रह्ममय बन जाओ ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ १९ ॥

[मुंडक, २.२.८]

१९. उस तत्त्वके पर (श्रेष्ठ या सूक्ष्म) और अपर (कनिष्ठ या स्थूल) दोनों स्वरूपोंका ज्ञान होने पर हृदयकी गाँठें छूट जाती हैं, सब संशय मिट जाते हैं और सब कर्मोंका क्षय हो जाता है ।

ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्ताद, ब्रह्म
पश्चाद्, ब्रह्म दक्षिणतश् चोत्तरेण ।
अधश् चोर्ध्वं च प्रसृतं, ब्रह्मैवेदम्
विश्वम् इदं वरिष्ठम् ॥ २० ॥

[मुंडक, २.२.११]

२०. यह अविनाशी ब्रह्म ही (हमारे) आगे, पीछे, दक्षिण, उत्तर, नीचे, ऊपर चारों तरफ़ फैला हुआ है । यह ब्रह्म ही विश्व है और सबसे श्रेष्ठ है ।

सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्त:शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतय: क्षीणदोषा: ॥ २१ ॥

२१. यह आत्मा हमेशा सत्यसे, तपसे, यथार्थ ज्ञानसे और ब्रह्मचर्यसे पाया जाता है। पापरहित और प्रयत्नशील लोग इस निष्कलंक और प्रकाश-स्वरूप आत्माको अपने अन्त:करणमें देख सकते हैं ।

सत्यम् एव जयते नानृतम्
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥ २२ ॥
[मुंडक, ३.१.५, ६]

२२. सत्यकी ही जय होती है, असत्यकी नहीं । जिस मार्गसे कृतार्थ ऋषिगण जाते हैं और जहाँ उस सत्यका परम निधान है, ऐसा देवोंका वह मार्ग हमारे लिए सत्यके द्वारा ही खुलता है ।

नायम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यम् एवैष वृणुते तेन लभ्यस्
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ २३ ॥

२३. यह आत्मा वेदोंके अध्ययनसे नहीं मिलता, न बुद्धिकी बारीकीसे या बहुत शास्त्र सुननेसे (यानी अनेक विषयोंकी जानकारीसे) ही मिलता है । परन्तु यह आत्मा जिस व्यक्तिका वरण करता है यानी जिस पर अनुग्रह करता है, उसीको इसकी प्राप्ति होती है-आत्मा उसीको अपना स्वरूप दिखाती है ।

नायम् आत्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिंगात् ।
एतैर् उपायैर् यतते यस्तु विद्वांस्
तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ २४ ॥

[मुंडक, ३.२.३, ४]

२४. यह आत्मा बलसे रहित, गफ़लतमें रहनेसे या अशास्त्रीय निरर्थक तप तपनेसे भी यह आत्मा नहीं मिलता । लेकिन जब ज्ञानी पुरुष इन उपायोंसे (यानी ऊपरके दोष मिटाकर) उसे पानेकी कोशिश करता है, तब उसकी आत्मा ब्रह्मपद प्राप्त कर लेती है ।

सम्प्राप्यैनम् ऋषयो ज्ञान-तृप्ता:
कृतात्मानो वीतरागा: प्रशान्ता: ।
ते सर्वगं सर्वत: प्राप्य धीरा
युकतात्मान: सर्वम् एवाविशन्ति ॥ २५ ॥

२५. इस आत्माको पाकर जो विद्वान् ऋषि ज्ञानतृप्त, जितात्मा, प्रशान्त और एकाग्र-चित्त हो जाते हैं, वे इस सर्वव्यापी आत्माको सर्वत्र पाकर सबमें प्रवेश करते हैं।

वेदान्त - विज्ञान - सुनिश्चितार्था:
संन्यास - योगाद् - शुद्ध - सत्त्वा: ।
ते ब्रह्म-लोकेषु परान्तकाले
परामृता: परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ २६ ॥

[मुंडक, ३.२. ५, ६ **]**

२६. वेदान्त (जिसमें सब ज्ञानका अन्त हो जाता है) और विज्ञान (प्रकृतिका ज्ञान) द्वारा जिन्होंने (परम) अर्थका अच्छी तरह निश्चय कर लिया है और साथ ही संन्यास व योग द्वारा जो शुद्ध सत्त्व (चित्त) वाले बन गये हैं, वे प्रयत्नवान ब्रह्मपरायण लोग मरने पर ब्रह्मलोकमें पहुँचकर मुक्त हो जाते हैं ।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषम् उपैति दिव्यम् ॥ २७ ॥

२७. जिस तरह समुद्रकी ओर बहनेवाली नदियाँ अपना नाम और रूप छोड़कर समुद्रमें ही लीन हो जाती हैं, उसी तरह मुक्तिप्राप्त ज्ञानी नाम-रूपसे छूटकर सर्वश्रेष्ठ दिव्य पुरुषमें लीन हो जाता है ।

स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद, ब्रह्मैव भवति ।
नास्याब्रह्मवित् कुले भवति ।
तरति शोकं, तरति पाप्मानम्
गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ २८ ॥

[मुंडक, ३.२. ८, ९]

२८. जो उस श्रेष्ठ ब्रह्मको जानता है, वह ब्रह्म ही बनता है । उसके कुलमें ब्रह्मको न जाननेवाला कोई पैदा नहीं होता | वह शौकसे तर जाता है, पापसे तर जाता है और हृदयके बन्धनोंसे छूटकर अमर बन जाता है ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मससा सह ।
आननदं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥
एतं हि वाव न तपति 'किम् अहं साधु नाकरवम् ।
किम अहं पापम् अकरवम्' इति ॥ २९ ॥

[तैत्तिरीय, २०९]

२९. जहाँ पहुँच न पानेसे मनके साथ वाणी लौट आती है, उस ब्रह्मके आनन्दका जो अनुभव कर लेता है, वह किसीसे डरता नहीं । (क्योंकि) उसे इस बातका पश्चात्ताप करनेका मौक़ा ही नहीं मिलता कि 'मैंने यह अच्छा काम नहीं किया, मुझसे यह पाप हो गया ।'

युवा स्यात् साधु युवाध्यायक: आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः।
तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ॥ ३० ॥
[तैत्तिरीय, २.८]

३०. नौजवानको चाहिये कि वह साधुचरित, बहुत अभ्यासी, आशावान, दृढनिश्चयी और बलसम्पन्न बने । ऐसे नौजवानके लिए यह सारी पृथ्वी द्रव्यमय बन जाती है ।

बलं वाव विज्ञानाद् भूय: ; अपि ह शतं विज्ञानवताम् एको बलवान आकम्पयते। स यदा बली भवति अथोत्थाता भवति, उत्तिष्ठन् परिचरिता भवति, परिचरन, उपसत्ता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बौद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति ॥ ३१ ॥

[छान्दोग्य, ७.८.१]

३१. विज्ञानसे (आत्म) बल श्रेष्ठ है, क्योंकि एक बलवान मनुष्य सौ विद्वानोंको डराता है । बलवान होने पर ही मनुष्य उठकर खड़ा होता है (यानी गुरुके घर जानेको तैयार होता है) ; उठने पर वह गुरुकी सेवा करता है, सेवा करनेसे वह उसके पास बैठने लायक बनता है; पास बैठनेसे द्रष्टा (गुरुकी दृष्टि समझनेवाला) बनता है, सुननेवाला बनता है, मनन करनेवाला बनता है, बुद्ध बनता है, कर्तृत्ववान बनता है, विज्ञानी बनता है।

मधुवाता ऋतायते । मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर् नः सन्त्वोषधीः । मधु नक्तम् उतोषसः । मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु चौर् अस्तु नः पिता । मधुमान् नो वनस्पतिः।

मधुमान् अस्तु सूर्यः माध्वीर् गावो भवन्तु नः ॥ ३२ ॥

[बृहदारण्यक, ६.३.६]

३२. (हम सत्यकी खोज करनेवालोंके लिए) हवा अनुकूल बने, नदियाँ हमें मीठा पानी दें, सब वनस्पतियाँ मीठी बनें । रात हमारे लिए कल्याणकारी बने, सबेरा सुखद बने, संध्या आनन्दप्रद बने | पितृस्वरूप आकाश हमें आशीर्वाद दे । पेड़ वगैरा हमें मीठे फल दें । सूर्य हमारा कल्याण करे । गायें हमें मीठा दूध दें ।

यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति ॥ ३३ ॥

[छान्दोग्य, १.१.१.]

३३. श्रद्धायुक्त अन्त:करणसे, ज्ञानपूर्वक और उपासनापूर्वक किया गया काम बहुत ही सामर्थ्यवान होता है ।

न जातु कामात् न भयात् न लोभात्
धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतो: ।
धर्मो नित्य: सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुर् अस्य त्वनित्य: ॥ ३४ ॥

३४. अपनी किसी इच्छाकी तृप्तिके लिए, (या) भयसे, लोभसे या प्राणोंकी रक्षाके विचारसे भी धर्म न छोड़ना चाहिये । (क्योंकि) धर्म नित्य है और सुख-दुःख थोड़े समयके हैं । आत्मा नित्य है, (पर उसे बन्धनमें डालनेवाला) शरीर नश्वर है ।

पाण्डव-गीतासे

पाण्डव : प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-
व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान् |
रूक्मांगदार्जुन-वशिष्ठ-विभीषणादीन्
पुण्यान् इमान् परमभागवतान् स्मरामि ॥

पाण्डव - प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक, भीष्म, दाल्भ्य, रुक्मांगद, अर्जुन, वसिष्ठ, बिभीषण आदि भगवानके परम पवित्र भक्तोंका मैं स्मरण करता हूँ ।

कुन्ती : स्वकर्म-फल-निर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश! त्वयि भक्तिर् दृढाऽस्तु मे॥

कुन्ती - अपने कर्मोंके फलस्वरूप जिस-जिस योनिमें मेरा जन्म हो, उस-उस योनिमें हे हृषीकेश ! तुझमें मेरी भक्ति दृढ़ रहे ।

द्रोण : ये ये हताश् चक्रधरेण राजन् !
त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन ।
ते ते गता विष्णुपुरीं प्रयाता:
क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्य: ॥।

द्रोण - हे राजा ! तीन लोकके स्वामी, चक्रधारी जनार्दनके हाथों जो-जो भी मारे गये वे सब वैकुण्ठ गये। भगवान्का क्रोध भी उसकी कृपा (वरदान) के समान है ।

गान्धारी : त्वम् एव माता च पिता त्वम् एव
त्वम् एव बंधुश्च सखा त्वम् एव ।
त्वम् एव विद्या द्रविणं त्वम् एव
त्वम् एव सर्व मम देवदेव ! ॥

गान्धारी - हे देवोंके देव ! तू ही मेरी माता है, तू ही पिता है, तू ही भाई और तू ही मित्र है, तू ही विद्या है और धन भी तू ही है । तू ही मेरा सब-कुछ है ।

विराट: नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम: ॥

विराट - सबसे बड़े देवको, गो-ब्राह्मणका हित करनेवाले, जगत्का कल्याण करनेवाले, श्रीकृष्ण गोविन्दको बार-बार नमस्कार है ।

प्रह्लाद :

नाथ ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचलाभक्तिर् अच्युतास्तु सदा त्वयि ॥
या प्रीतिर् अविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वाम् अनुस्मरत: सा मे हृदयान् मापसर्पतु ॥

प्रह्लाद - है नाथ ! हे अच्युत ! हजारों योनियोंमें जहाँ-जहाँ मैं जन्म लूँ, वहाँ-वहाँ तुझमें मेरी भक्ति सदा अचल रहे । अविवेकी पुरुषोंकी जैसी गाढ़ प्रीति विषयोंमें होती है, वैसी ही किन्तु कल्याणकारी प्रीति तेरा स्मरण करनेवाले मेरे हृदयसे कभी दूर न हो ।

भरद्वाज :

लाभस् तेषां जयस् तेषां कुतस् तेषां पराजयः ।
येषाम् इन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥

भरद्वाज - जिनके हृदयमें नील कमल-सा साँवला, कमलापति, जनार्दन बैठा है, उन्हें लाभ ही लाभ, जय ही जय है; उनके लिए पराजय कहाँ से ?

मार्कण्डेय :

सा हानिस् तन् महच्छिद्रं सा चान्ध-जड-मूढता ।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिंतयेत् ॥

मार्कण्डेय - मुहूर्त या क्षणके लिए भी वासुदेवका चिन्तन नहीं हो पाया, समझो कि वह बड़ा नुकसान हुआ, वह एक बड़ा छेद पड़ा| उसीको अन्धता, जड़ता और मूर्खता जानो ।

शौनक :

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवा: ।
योऽसौ विश्वम्भरो देव: स भकतान् किम् उपेक्षते ॥

शौनक - विष्णुके भक्त व्यर्थ ही अन्न और वस्त्रकी चिन्ता करते हैं । जो भगवान् सारी दुनियाको पालता है, वह क्या अपने भक्तकी उपेक्षा करेगा ?

सनत्कुमार :

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्व-देव-नमस्कार: केशवं प्रति गच्छति ॥

सनत्कुमार - जिस प्रकार आकाशसे गिरनेवाला पानी अन्तमें समुद्रमें ही जाता है, उसी प्रकार सब तरहके देवोंको किया हुआ नमस्कार परमात्मा केशवको ही पहुँचता है ।

मुकुन्दमालासे

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति

भक्त-प्रियेति भव-लुण्ठन-कोविदेति ।

नाथेति नाग-शयनेति जगन्निवासे-

त्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ! ॥ १॥

१. हे मुकुन्द ! कुछ ऐसा कर कि जिससे मैं प्रतिदिन ‘हे 'श्रीवल्लभ, हे वरद, हे दयानिधान, हे भक्त-प्रिय, हे जन्म-मरणका नाश करनेमें कुशल, हे नाथ, हे नाग-शयन, हे जगन्निवास !’ आदि-आदि रटता ही रहूँ ।

मुकुन्द ! मूर्ध्रा प्रणिपत्य याचे
भवन्तम् एकान्तम, इयन्तम् अर्थम् ।
अविस्मृतिस् त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्-प्रसादात् ॥ २ ॥

२. हे मुकुन्द ! सिर झुकाकर नमस्कार करके केवल मैं तुझसे इतनी ही एक चीज़ माँगता हूँ कि तेरी कृपासे मैं अपने किसी भी जन्ममें तेरे चरण-कमलोंको न भूलूँ ।

नास्था धर्मे न वसु-निचये नैव कामोपभोगे
यद् भाव्यं तद् भवतु भगवन् पूर्व-कर्मानुरूपम् ।
एतत् प्रार्थ्यं मम बहु-मतं जन्म-जन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भो-रुह-युग-गता निश्चला भक्तिर् अस्तु ॥३॥

३. हे भगवन् ! मुझे न धर्ममें (पुण्य-प्राप्तिमें) आस्था है न धन-संग्रहमें, न विषयोपभोगमें । पूर्व-कर्मानुसार यह सब जिस तरह होना हो, हो । मेरे मन तो यही एक बहुमोल प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरमें भी तेरे चरण-कमलकी जोड़ीमें मेरी भक्ति अचल रहे ।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो

नरके वा नरकान्तक ! प्रकामम् ।

अवधीरित-शारदारविन्दौ

चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥ ४ ॥

४. हे नरकासुरका नाश करनेवाले ! चाहे मैं स्वर्गमें, पृथ्वी पर या नरकमें ही क्यों न रहूँ, पर तू इतना करना कि मरते समय मैं शरद ऋतुके कमलसे भी सुन्दर तेरे चरणोंका चिन्तन करता रहूँ |

कृष्ण ! त्वदीय पद-पङ्कज-पञ्जरान्तम्

अद्यैव मे विशतु मानस-राजहंसः ।

प्राण-प्रयाण-समये कफ-वात-पित्तैः

कण्ठावरोधन-विधौ स्मरणं कुतस् ते ॥ ५ ॥

५. हे कृष्ण ! मेरा चित्तरूपी मानस-हंस आज ही तेरे चरण-कमलरूपी पिंजरेमें बन्द हो जाय । क्योंकि प्राण निकलनेके वक़्त जब कफ, वात और पित्तसे कण्ठ रूँध जायगा, तब तेरा स्मरण कैसे हो सकेगा ?

भव-जलधि-गतानां द्वन्द्व-वाताहतानाम्
सुत-दुहितृ-कलत्र-त्राण-भारावृतानाम् ।
विषम-विषय-तोये मज्जताम् अप्लवानाम्
भवति शरणम् एको विष्णु-पोतो नराणाम् ॥६॥

६. भव-सागरमें पड़े हुए, सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूपी वायुके थपेड़े खानेवाले, पुत्र, पुत्री, पत्नी आदिकी रक्षाके भारसे दबे हुए, नावके अभावमें विषम विषयोंके पानीमें गोते खानेवाले मनुष्योंके लिए विष्णुरूपी नाव ही एक शरण है।

भव-जलधिम् अगाधं दुस्तरं निस्तरेयम्

कथम् अहम् इति चेतो मा सम गा: कातरत्वम् ।

सरसिज-दृशि देवे तावकी भक्तिर् एका

नरक-भिदि-निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥ ७ ॥

७. हे चित्त ! तू यह डर मत रख कि इस अगाध और दुस्तर भव-सागरको मैं किस तरह पार कर सकूंगा । यदि कमल-से नेत्रोंवाले और नरकासुरका नाश करनेवाले देवमें तेरी अनन्य भक्ति होगी, तो वह तुझे ज़रूर पार लगायेगी ।

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः

कण्ठेन स्वर-गद्गदेन नयनेनोद्गीर्ण-बाष्पाम्बुना ।

नित्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल-ध्यानामृतास्वादिनाम्

अस्माकं सरसीरुहाक्ष ! सततं संपद्यतां जीवितम् ॥ ८ ॥

८. दोनों हाथ जोड़कर, सिर नमाकर, रोमांच-सहित सर्वांग पुलकित होकर, गद्गद कण्ठसे, आँसू बहाती आँखोंसे, तेरे चरण-कमलकी जोड़ीका ध्यानामृत चखते हुए, है कमलनयन ! हमारा जीवन बीते ।

मदन ! परिहर स्थितिं मदीये
मनसि मुकुन्द-पदारविन्द-धाम्नि ।
हर-नयन-कृशानुना कृशोऽसि
स्मरसि न चक्र-पराक्रमं मुरारेः ॥ ९ ॥

९. हे मदन ! मुकुन्दके चरण-कमलके धामरूप मेरे चित्तसे तू तुरंत चला जा । शिवके नेत्रकी आगसे तू दुबला तो हुआ ही है, फिर भी मुरारिके चक्रके पराक्रमको तू याद क्यों नहीं करता ?

इदं शरीरं शत-सन्धि-जर्जरं
पतत्यवश्यं परिणाम-पेशलम् ।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ ! दुर्मते !
निरामयं कृष्ण-रसायनं पिब ॥ १० ॥

१०. यह शरीर सैकड़ों सन्धियों-जोड़ों-से जर्जर हो जाता है, पतनशील है और अवश्य नष्ट होनेवाला है । तो हे मूढ़ और दुर्बुद्धि पुरुष ! दूसरी दवाइयाँ खा-खाकर तू क्यों हैरान होता है ? सब रोगोंसे रहित कृष्णरूपी रसायन पी ले ।

नमामि नारायण-पाद-पङ्कजम्

करोमि नारायण-पूजनं सदा ।

वदामि नारायण-नाम निर्मलम्

स्मरामि नारायण-तत्त्वम् अव्ययम् ॥ ११ ॥

११. मैं नारायणके चरण-कमलको नमस्कार करता हूँ; मैं सदा-सर्वदा नारायणकी पूजा करता हूँ; मैं नारायणका पवित्र नाम लेता हूँ; मैं अविनाशी नारायण-तत्त्वका स्मरण करता हूँ ।

अनन्त ! वैकुण्ठ ! मुकुन्द ! कृष्ण !

गोविन्द ! दामोदर ! माधवेति ।

वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिद्

अहो ! जनानां व्यसनाभिमुख्यम् ॥ १२ ॥

१२. अनन्त, वैकुण्ठ, मुकुन्द, कृष्ण, गोविन्द, दामोदर, माधव आदि नाम बोलनेकी शक्ति होते हुए भी कोई ये नाम नहीं बोलता । अरेरे, व्यसनोंकी तरफ मनुष्योंकी वृत्ति कितनी बलवान होती है !

द्वादश-पंजरिका-स्तोत्रसे

मूढ ! जहीहि धनागम-तृष्णाम कुरू सदबुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।

हे मूर्ख ! धन पानेकी तृष्णा छोड़ दे । मनमें तृष्णारहित सत्य-संकल्पको धारण कर । अपनी मेहनतसे जितना धन मिल जाय, उससे अपने दिलको खुश रख ।

यल्लभसे निज-कर्मोपात्तम् वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥
अर्थम् अनर्थं भावय नित्यम् नास्ति ततः सुख-लेशः सत्यम् ।

हमेशा खयाल रख़ कि धन अनर्थका कारण है । सचमुच उसमें ज़रा भी सुख नहीं; धनवानोंको पुत्रसे भी डरना पड़ता है । सब जगह यह रीति पायी गयी है ।

पुत्राद् अपि धन-भाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः ॥
कामं क्रोधं लोभं मोहम् त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्म-ज्ञानविहीना मूढाः ते पच्यन्ते नरक-निगूढाः ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः व्यर्थं कुप्यसि सर्व-सहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानम् सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ॥
नलिनी-दल-गत सलिलं तरलम् तद्वज्-जीवितम्
अतिशय-चपलम् ।

काम, क्रोध, लोभ, मोहका त्याग करके अपने विषयमें सोच कि 'मैं कौन हूँ' । जिन्हें आत्मज्ञान नहीं, ऐसे मूढ़ लोग नरकमें पड़े अुबते जाते हैं ।

तुझमें, मुझमें और दूसरोंमें सब-कुछ सहनेवाला एक ही विष्णु है, फिर भी तू नाहक गुस्सा होता है। तू सबमें आत्माको ही देख: और भेदभावरूपी अज्ञानको छोड़ दे ।

कमलके पत्ते पर पड़े हुए तरल पानीकी तरह जीवन बहुत ही चंचल है ।

विद्धि व्याध्यभिमान-ग्रस्तम् लोकं शोक-हतं च
समस्तम् ॥

तू यह समझ ले कि यह सारा संसार बीमारियों, अभिमान और शोकसे घिरा हुआ है ।

रामचरितमानससे

१. तुलसी-सूक्ति-मौक्तिक

परहित सरिस धरम नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

*　　*　　*

सुमति कुमति सबके उर बसहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

*　　*　　*

धन्य सो भूप नीति जो करई ।
धन्य सो द्विज धर्म न टरई ॥
धन्य धरी सोइ जब सतसंगा ।
धन्य जन्म हरिभक्ति अभंगा ॥

*　　*　　*

साधु चरित सुभ सरिस कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा ।
बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥

* * *

जेहिके 'जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू ॥

* * *

परहित बस जिनके मन माँहीं ।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

* * *

रघुकुल-रीति सदा चलि आई ।
प्रान जाहुँ बरू बचन न जाई ॥
नहि असत्य सम पातक-पुंजा ।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥

* * *

सत्यमूल सब सुकृत सुहाए ।
बेद-पुरान बिदित मनु गाए ॥

*   *   *

मोसम दीन न दीन-हित
तुम समान रघुवीर ।
अस विचारी रघु-वंश-मणि
हरहु विषम भव-पीर ॥

*   *   *

बार बार वर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग ।
पद-सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥

२

(राग सोरठ)

काम कोह मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्हकें कपट, दम्भ नहिं माया ।
तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया ॥
सबके प्रिय, सबके हितकारी ।
दुख-सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाँड़ि गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्हके मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी ।

धनु पराव विष तें विष भारी ॥

जे हरषहिं पर संपति देखी ।

दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥

जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान-पिआरे ।

तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात ।

मन-मन्दिर तिन्ह कें बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

- अयोध्याकांड

३. राम-रथ

सुनहु सखा, कह कृपा-निधाना ।
जेहिं जय होइ सो स्यन्दन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम पर-हित घोरे ।
छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी सुजाना ।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा ।
बर बिग्यान कठिन कोदण्डा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥

कवच अभेद विप्र-गुर-पूजा ।
एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके ।
जीतन कहँ न कतहूँ रिपु ताकें ॥
महा अजय संसार-रिपु , जीति सकइ सो वीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति-धीर ॥

- लंकाकाण्ड

४

धन घमंड नभ गरजत घोरा ।
प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं ।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ ।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें ।
खलके बचन संत सह जैसें ॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई ।
जस थोरेहूँ घन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी ।
जनु जीवहि माया लपटानी ॥

समिटि-समिटि जल भरहिं तलावा ।
जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई ।
होई अचल जिमि जिव हरि पाई ॥
हरित भूमि तृन-संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखण्ड बिबादतें लुप्त होहिं सदग्रंथ ॥

- किष्किन्धाकाण्ड

५. 'मानस' सरोवर

सुखी मीन जे नीर अगाधा ।
जिमि हरि-सरन न एकउ बाधा ॥।
फूलें कमल सोह सर कैसा ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥

- किष्किन्धाकाण्ड

६

(राग सारंग - ताल केरवा)

जय जय सुर-नायक, जन-सुख-दायक,

प्रनत-पाल भगवंता ।

गो-द्विज-हितकारी जय असुरारी,

सिंधुसुता प्रियकंता ।

पालन सुरधरनी अद्भुत करनी,

मरम न जानइ कोई ।

जो सहज कृपाला दीनदयाला,

करउ अनुग्रह सोई ॥

७. जय राम स्तोत्र

(तोटक छंद)

जय राम रमा-रमनं समनं ।
भव-ताप-भयाकुल पाहि जनं ॥
अवधेस, सुरेस, रमेस बिभो ।
सरनागत मागत पाहि प्रभो ॥
दस-सीस-बिनासन बीस भुजा ।
कृत दूरि महा-महि भूरि-रुजा ।
रजनी - चर - वृन्द - पतंग रहे ।
सर-पावक-तेज प्रचंड. दहे ॥
महि - मंडल - मंडन चारुतरं ।
धृत - सायक - चाप - निषंग - बरं ॥
मद - मोह - महा ममता - रजनी ।
तमपुंज दिवाकर - तेज - अनी ॥

मनजात किरात निपात किए ।
मृग लोभ कुभोग सरेन हिये ॥
इति नाथ अनाथनि पाहि हरे ।
विषयावन पाँवर भूलि परे ॥
बहु रोग वियोगन्हि लोग हये ।
भवदंध्रि-निरादर के फल ये ॥
भव-सिन्धु अगाध परे नर ते ।
पद-पंकज-प्रेम न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नित ही ।
जिन्हकें पद-पंकज प्रीति नहीं ॥
अवलंब भवंत-कथा जिन्हकें ।
प्रिय संत अनंत सदा तिन्हकें ॥
नहि राग न लोभ न मान मदा ।
तिन्हकें सम बैभव वा बिपदा ॥

एहि ते तव सेवक होत मुदा ।
मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेम निरंतर नेम लिये ।
पद-पंकज सेवत सुद्ध हिये ॥
सम मानि निरादर आदर ही ।
सब संत सुखी बिचरंति मही ॥
मुनि-मानस-पंकज-भृगं भजे ।
रघुबीर महा-रन-धीर अजे ॥
तब नाम जपामि नमामि हरी ।
भव-रोग-महा-मद-मान-अरी ॥
गुनसील कृपा-परमायतनं ।
प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ॥
रघुनंद ! निकंदय द्वंद्वधनं ।
महिपाल ! बिलोकय दीनजनं ॥।

हिन्दुस्तानी भजन

१

(सोरठ)

जेहि सुमिरत सिधि होइ,

गन-नायक करिबर-बदन ।

करउ अनुग्रह सोइ,

बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन ॥

मूक होइ बाचाल,

पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।

जासु कृपाँ सो दयाल,

द्रवउ सकल कलि-मल-दहन ॥

२

(राग देस - ताल दादरा)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ? |
मो समान आरत नहि, आरति-हर तोसो ॥ २ ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो |
तात, मात, गुरु, सखा तू , सब विधि हितु मेरो ॥ ३ ॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥ ४ ॥

३

(राग सोहनी हवन पंजाबी ठेका वि. तीन ताल)

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।

परिहरि रामभक्ति-सुरसरिता आस करत ओस-कनकी ॥

धूम-समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति धनकी ।

नहि तहँ सीतलता, न बारि, पुनि हानि होति लोचनकी ॥

ज्यों गच काँच विलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी ।

टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारी आननकी ॥

कहूँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जनकी ।

तुलसिदास प्रभु ! हरहु दुसह दुख करहु लाज निजपनकी॥

४

(राग खमाज - तीन ताल)

माधव ! मोह-पास क्यों टूटै ?

बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै ॥

घृतपूरन कराह अन्तरगत ससि-प्रतिबिम्ब दिखावै ।

इँधन अगन लगाय कल्पसत औंटत नास न पाव ॥

तरू कोटर महँ बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे ।

साधन करिय विचार-हीन मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥

अंतर मलिन विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।

मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे ॥

तुलसिदास हरि गुरु-करुना बिनु, बिमल विवेक न होई ।

बिनु विवेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई ॥

५

(राग परज - तीन ताल)

यह विनती रघुवीर गुसाईं ।
और आस बिश्वास भरोसो, हरु जियकी जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधिसिधि विपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये कमठ-अण्डकी नाईं ॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी, प्रीति प्रतीति सगाईं ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाँईं ॥

६

(राग कौशिया - तीन ताल)

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी ।

श्री रघुबीर धीर हितकारी ॥

मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ आइ बसे बहु चोरा ॥

अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिं नहि विनय निहोरा ॥

तम, मोह, लोभ, अहँकारा । मद, क्रोध, बोध-रिपु , मारा ॥

अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥

मैं एक, अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥

भागेउ नहिं नाथ, उबारा । रघुनायक ! करहु सँभारा ॥

कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तस्कर तव धामा ॥

चिन्ता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होई तुम्हारा ॥

७

(राग आसावरी या तोड़ी - तीन ताल)

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति योग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही ।
सो संपदा बिभीषण कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥

८

(राग खमाज - तीन ताल)

कुठुंब तजि शरण राम ! तेरी आयो,
तजि गढ़ लंक, महल औ' मंदिर,
नाम सुनत उठि धायो ॥ ध्रु० ॥
भरी सभामें रावण बैठ्यो चरण प्रहार चलायो ।
मूरख अंध कह्यो नहिं मानै बार बार समझायो ॥१॥
आवत ही लंका-पति कीनो, हरि हँस कंठ लगायो ।
जन्म जन्मके मिटे पराभव राम-दरस जब पायो ॥२॥
है रघुनाथ ! अनाथ के बंधु ! दीन जान अपनायो ।
तुलसिदास रघुवरकी शरणा भक्ति अभय पद पायो ॥३॥

९

(राग खमाज - तीन ताल)

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बन्धु , भरत महतारी ।

बलि गुरु तज्यो, कंत व्रजबनितनि, भये मुद-मंगलकारी ॥

नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।

अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥

तुलसी सो सब भाँति परमरहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।

जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥

१०.

(राग पीलु - तीन ताल)

रघुवर ! तुमको मेरी लाज ।

सदा सदा मैं सरन तिहारा, तुम बड़े गरीबनिवाज ॥

पतित-उधारन बिरुद तिहारो स्रवनन सुनी अवाज ॥

हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज ॥

अघ-खंडन, दुःख-भंजन जनके यही तिहारो काज ॥

तुलसिदास पर किरपा करिये भक्ति-दान देहु आज ॥

११

(राग धनाश्री - तीन ताल)

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ।

काको नाम पतित-पावन जग,

केहि अति दीन पियारे ॥

कौने देव बराइ बिरद-हित,

हठि-हठि अधम उधारे ॥

खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़

जवन कवन सुर तारे ॥

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब

माया-बिबस बिचारे ॥

तिनके हाथ 'दासतुलसी' प्रभु

कहा अपुनपौ हारे ॥

१२

(राग भैरवी - तीन ताल)

भज मन राम-चरण सुखदाई ॥ ध्रु० ॥
जिहि चरननसे निकसी सुर-सरी संकर-जटा समाई ।
जटासंकरी नाम पर्यो है, त्रिभुवन तारन आई ॥ १ ॥
जिन चरननकी चरन-पादुका भरत रह्यो लव लाई ।
सोई चरन केवट धोय लीने तब हरि नाव चलाई ! ॥ २ ॥
सोई चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई ।
सोई चरन गौतम-ऋषि-नारी परसि परम-पद पाई ॥ ३॥
दंडक-वन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई ।
सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनक-मृगा सँग घाई ॥ ४ ॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय-व्याकुल तिन जय-छत्र धराई ।
रिपको अनुज बिभीषण निसिचर परसत लंका पाई ॥ ५ ॥
सिव-सनकादिक अरू ब्रह्मादिक शेष सहस मुख गाई ।
तुलसिदास मारुत-सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई ॥६॥

१३

(राग कौशिया - तीन ताल)

जानकीनाथ सहाय करे जब । कोन बिगाड़ कर नर तेरो
|| ध्रु० ||

सूरज, मंगल, सोम, भृगुसुत ।
बुध अरु गुरु वरदायक तेरो ।
राहु केतुकी नाहिं गम्यता | संग शनीचर होत उचेरो ॥ १ ॥
दुष्ट सु:शासन विमल द्रौपदी । चीर उतार कुमन्तर प्रेरो ।
जाकी सहाय करी करुणानिधि |
बढ़ गये चीरके मार धनेरो ॥ २ ॥
गरभमें राख्यो परीक्षित राजा। अश्वत्थामा जब अस्त्र प्रेरो ।
भारतमें मरुही के अंडा ॥ ता पर गजका घंटा गेरो ॥ ३ ॥
जाकि सहाय करी करुणानिधि ।
ताके जगतमें भाग बड़ेरो ।
रघुवंशी संतन सुखदायी ।
तुलसिदास चरणनको चेरो ॥४ ॥

१४

(राग गौड़ सारंग - तीन ताल)

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।

रामकृपा भवनिसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं ॥

पायो नाम चारुचिंतामनि उर कर ते न खसैहौं ।

स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी चित्त कंचनहिं कसैहौं ।।

परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं ।

मन मधुपहि पन कै, तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहों ॥

१५

(राग पूर्वी - तीन ताल)

मन पछितै है अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु ,
करम वचन, अरु हीते ॥ १ ॥
सहस-बाहु दस-वदन आदि नृप,
बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन-धाम सँवारे,
अंत चले उठि रीते ॥ २ ॥
सुत-वनितादि जानि स्वारथ-रत,
न करु नेह सब ही ते ।
अंतहुँ तोहि तजेंगे, पामर !
तू न तजै अब ही तें ॥ ३ ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़,
त्यागु दुरासा जीती ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ,
विषय-भोग बहु धीते ॥ ४ ॥

१६

(राग खमाज - तीन ताल)

माधव ! मो समान जग माहीं ।
सब बिधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं ॥
तुम सम हेतु-रहित, कृपालु , आरत-हित, ईस न त्यागी ।
मैं दुख सोक बिकल, कृपालु , केहि कारन दया न लागी ॥
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।
ग्यान-भवन तनु दियहु नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील, श्रीखंड वसंतहिं दूषन मृषा लगावै ।
सार-रहित हतभाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किम पावै ॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ विचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोह - संृखला छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥

१७

(राग कल्याण - तीन ताल)

कलि नाम कामतरू रामको ।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख
दोष घोर धन धामको ॥ ध्रु० ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन
वाम विधाता बामको ।
कहत मुनीस महेस महातम
उलटे सूधे नामको |
भलो लोक परलोक तासु
जाके बल ललित ललामको ।
तुलसी जग जानियत नाम ते
सोच न कूच मुकामको ||

१८

(राग दरबारी कानड़ा - तीन ताल)

और नहीं कुछ कामके,
मैं भरोसे अपने रामके – और.
दोऊ अक्षर सब कुल तारे,
वारी जाऊँ उस नामपे – और.
तुलसिदास प्रभु राम दयाधन,
और देव सब दामके – और.

१९

(राग हमीर - ताल केरवा)

श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भव-भय दारुनम् ,
नव-कंज-लोचन कंज-मुख, कर कंज, पदकंजारुनम् । १
कन्दर्प अगनित अमित छबि नव नील नीरद सुन्दरम् ,
पट-पीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक-सुतावरम् । २
भजु दीन-बन्धु दिनेश दानव दैत्य वंस निकन्दनम् ,
रघुनन्द आनंद-कंद कौसल-चंद दसरथ-नन्दनम् । ३
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारू अंग विभूषनम् ,
आजानुभुज सर-चाप-धर संग्राम-जित खर-दूषनम् । ४
इति वदति तुलसीदास संकर सेष मुनि-मन-रंजनम्
मम-हृदय-कुंज निवास करु कामादि खल-दल-गंजनम् । ५

२०

(राग - झिंझोटी - ताल दादरा)

‘कहाँके पथिक कहाँ कीन्ह है गमनवाँ । कहाँके.

कौन गाम कौन ठामके वासी राम

के कारण तुम्ह तज्यो है भवनवाँ’ – कहाँके. ॥ १ ॥

‘उत्तर दिसि एक नगरी अयोध्या

राजा दशरथ वहाँ कीन्ह है भवनवाँ’ – कहाँके. ॥ २ ॥

‘उनहीके हम दोनों कुँवरवाँ

माताके वचन सुनि तज्यो है भवनवाँ’- कहाँके. ॥ ३ ॥

ग्राम-वधू पूछे उन्ह सीयासे

‘कौनसे प्रीतम कौनसे देवरवाँ’ – कहाँके. ॥ ४ ॥

सिया मुसुकाई बोली मृदु बानी

‘साँवरे सो प्रीतम गौर सो देवरवाँ' – कहाँके. ॥ ५ ॥

तुलसीदास प्रभु आस चरननकी

मेरो मन हर लीनो, जानकी-रमनवाँ – कहाँके. ॥ ६ ॥

२१

(राग कल्याण - तीन ताल)

चरन-कमल बन्दौं हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै; अंधेको सब कछु दरसाई ॥

बहिरो सुनै; मूक पुनि बोलै; रंक चलै सिर छत्र धराई ॥

सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बन्दौं तेहि पाई ॥

२२

(राग - गौरी - तीन ताल)

अँखियाँ हरि दरसनकी प्यासी
देख्यो चाहत कमलनैनको
निसिदिन रहत उदासी ॥ १ ॥
आये ऊधो फिरि गये आँगन
डारि गये गर फाँसी ॥ २ ॥
केसरि-तिलक मोतिनकी माला
वृन्दावनको वासी ॥ ३ ॥
काहूके मनकी कोऊ न जानत
लोगनके मन हाँसी ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु ! तुमरे दरस बिन
लेहौं करवत कासी ॥ ५ ॥

२३

(राग आसा - ताल दादरा)

दीनन दुख-हरन देव सन्तन हितकारी ॥ ध्रु० ॥

अजामील गीध व्याध, इनमें कहो कौन साध ।

पंछीको पद पढ़ात, गणिका-सी तारी ॥ १ ॥

ध्रुवके सिर छत्र देत, प्रह्लादको उबार लेत ।

भक्त हेत बाँध्यो सेत, लंक पूरी जारी ॥ २ ॥

तंदुल देत रीझ जात, साग-पातसों अघात ।

गिनत नहीं जूठे फल, खाटे मीठे खारी ॥ ३ ॥

गजको जब ग्राह ग्रस्यो, दुःशासन चीर खस्यो ।

सभा बीच कृष्ण कृष्ण द्रौपदी पुकारी ॥ ४ ॥

इतने हरि आय गये, बसनन आरुढ़ भये ।

सूरदास द्वारे ठाढ़ो आँधरो भिखारी ॥ ५ ॥

२४

(राग भैरवी - पंजाबी ठेका, तीन ताल)

सुने री मैंने निर्बलके बल राम ।

पिछली साख भरूँ संतनकी आड़े सँवारे काम ॥ ध्रु० ॥

जबलग गज बल अपनो बरत्यो नेक सरो नहिं काम ।

निर्बल है बल राम पुकार्यो आये आधे नाम ॥

द्रुपद-सुता निर्बल भइ ता दिन गहलाये निज धाम ।

दुःशासनकी भुजा थकित भइ वसन रूप भये श्याम ॥

अप-बल, तप-बल और बाहु-बल चौथा है बल दाम ।

सूर किशोर कृपासे सब बल हारेको हरिनाम ॥

२५

(राग काफी - ताल दीपचंदी)

अबकी टेक हमारी । लाज राखो गिरिधारी ॥ ध्रु० ॥

जैसी लाज राखी अर्जुनकी भारत-युद्ध मँझारी ।
सारथि होके रथको हाँको चक्र-सुदर्शन-धारी ॥
भक्तकी टेक न टारी ॥ १ ॥

जैसी लाज राखी द्रौपदीकी होन न दीनि उघारी ।
खैंचत खैंचत दोउ भुज थाके दुःशासन पचिहारी ॥
चीर बढ़ायो मुरारी ॥ २ ॥

सूरदासकी लाज राखो, अब को है रखवारी ?
राधे राधे श्रीवर प्यारो श्रीवृषभान-दुलारी ॥
शरण तक आयो तुम्हारी ॥ ३ ॥

२६

(राग भैरवी - तीन ताल)

लज्जा मोरी राखो श्याम हरी !

कीनी कठिन दु:शासन मोसे गहि केशों पकरी ॥ ध्रु० ॥

आगे सभा दुष्ट दुर्योधन चाहत नग्न करी ।

पाँचों पांडव सब बल हारे तिनसों कछु न सरी ॥ १ ॥

भीष्म द्रोण विदुर भये विस्मय तिन सब मौन धरी ।

अब नहि मात पिता सुत बांधव, एक टेक तुम्हरी ॥ २ ॥

वसन प्रवाह किये करुणा-निधि, सेना हार परी ।

सूर श्याम जब सिंह-शरण लइ स्यालोंको काहि डरी? ॥ ३ ॥

२७

(राग आसा - माँड, तीन ताल या दीपचंदी)

तुम मेरी राखो लाज हरी ।
तुम जानत सब अन्तरजामी ॥
करनी कछु न करी ॥ १ ॥
औगुन मोसे बिसरत नाहि,
पल छिन धरी घरी ।
सब प्रपंचकी पोट बाँध करि
अपने सीस धरी ॥ २ ॥
दारा सुत धन मोह लिये हौं
सुधि-बुधि सब बिसरी ।
सूर पतितको बेग उधारो,
अब मेरी नाव भरी ॥ ३ ॥

२८

(राग बागेश्री - ताल केरवा)

अबके नाथ ! मोहि उधारि ।
मग नहीं भव-अम्बु-निधिमें कृपा-सिंधु मुरारि ॥
नीर अति गंभीर माया लोभ लहर तिरंग ।
लिये जात अगाध जलमें गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति मोट अध सिर भार ।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार ॥
काम क्रोध समेत तृस्ना पवन अति झकझोर ।
नाहि चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर ॥
थक्यो बीच बिहाल बिहवल सुनो करुना-मूल !
श्याम ! भुज गहि काढ़ि लीजै सूर ब्रजके कूल ॥

२९

(राग बागेश्री - ताल झुमरा)

टेर सुनो ब्रजराज दुलारे ।
दीन, मलीन, हीन सुभ गुण सों,
आय पर्यो हूँ द्वार तिहारे ॥ ध्रु० ॥
काम क्रोध अरू कपट लोभ मद,
एहि मेरे प्राण पियारे ।
भ्रमत रह्यो इन सँग बिसयन महँ,
सूरदास तव चरण बिसारे ॥

३०

(राग केदार - तीन ताल)

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।

जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो निमकहरामी॥ ध्रु० ॥

भरि भरि उदर विषयको धावौं, जैसे सूकर ग्रामी ।

हरिजन छाँड़ हरि-बिमुखनकी

निसि-दिन करत गुलामी ॥ १ ॥

पापी कौन बड़ो है मोतें,

सब पतितनमें नामी ।

सूर पतितको ठौर कहाँ है,

सुनिये श्रीपति स्वामी ॥ २ ॥

३१

(राग सिंध - काफी - तीन ताल)

प्रभु ! मोरे अवगुण चित्त न धरो ।
सम-दरशी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो ॥
एक नदिया एक नार कहावत मैलो हि नीर भरो ।
जब मिल करके एक बरन भये सुरसरि नाम पर्यो ॥
इक लोहा पूजामें राखत, इक घर बधिक पर्यो ।
पारस गुण अवगुण नहिं चितवत, कंचन करत खरो ॥
यह माया भ्रम-जाल कहावत सूरदास सगरो ।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो, नहि, प्रन जात टरो ॥

३२

(राग जयतिश्री - तीन ताल)

जैसे राखहु वैसे हि रहौं ।

जानत दुःख सुख सब जनके तुम ।

मुखतें कहा कहौं ॥

कबहुँक भोजन लहौं कृपा-निधि,

कबहुँ भूख सहौं ।

कबहुँक चढौं तुरंग महा-गज,

कबहुँक भार बहौं ॥

कमल-नयन घन-श्याम मनोहर,

अनुचर भयो रहौं ।

सूरदास प्रभु भकत-कृपानिधि,

तुम्हरे चरन गहौं ॥

३३

(राग भीमपलासी - तीन ताल)

सबसे ऊँची प्रेम सगाई ।

दुर्योधनको मेवा त्यागो साग विदुर घर पाई ॥ ध्रु० ॥

जूठे फळ सबरीके खाये बहुविधि प्रेम लगाई ॥

प्रेमके बस नृप-सेवा कीन्हीं आप बने हरि नाई ॥ १ ॥

राजसुयज्ञ युधिष्ठिर कीनो तामैं जूठ उठाई ॥

प्रेमके बस अर्जुन-रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई ॥ २ ॥

ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन गोपिन नाच नचाई ॥

सूर क्रूर इस लायक नाहीं कहँ लगि करौं बड़ाई ॥ ३ ॥

३४

(राग काफी - तीन ताल)

रे मन ! मूरख जनम गँवायो ।

करि अभिमान विषय-रस राच्यो स्याम-सरन नहि आयो ॥

यह संसार फूल सेमरको सुन्दर देखि लुभायो ।

चाखन लाग्यो रुई गई उड़ि, हाथ कछू नहिं आयो ॥

कहा भयो अबके मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो ।

कहत सूर भगवंत भजन बिनु सिर धुनि धुनि पछितायो ॥

३५

(राग खमाज - विलंबित तीन ताल: पंजाबी ठेका)

अब तो प्रगट भई जग जानी ।

वा मोहनसों प्रीति निरन्तर

नाहिं रहेगी छानी ॥ ध्रु० ॥

कहा कहौं सुन्दर मूरत इन

नयनन माँझ समानी ।

निकसत नाहिं बहुत पचिहारी

रोम रोम उरझानी ॥ १ ॥

अब कैसे निर्वारि जात है,

मिले दूध ज्यों पानी ।

सूरदास प्रभु अन्तर्यामी

ग्वालिन मनकी जानी ॥ २ ॥

३६

(राग जोगी - तीन ताल)

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल ।
काम क्रोधको पहिरि चोलना
कंठ विषयकी माल ||
महा मोहके नूपुर बाजत
निन्दा सब्द रसाल ।
भरम भर्यो मन भयो पखावज
चलत कुसंगति चाल ॥
तृस्ना नाद करत घट भीतर
नाना बिधि दै ताल ।
मायाको कटि फेटा बाँध्यो
लोभ तिलक दै भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई
जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदासकी सबै अविद्या
दूर करो नंदलाल ॥

३७

(राग आसावरी या सारंग - तीन ताल)

छाँड़ि मन, हरि-विमुखनको संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजनमें भंग ॥
कहा होत पय-पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग ।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ॥
खरको कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग ।
गजको कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छग ॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निषंग ।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग ॥

३८

(राग बागेश्री - तीन ताल)

सब दिन होत न एक समान ।

एक दिन राजा हरिश्चन्द्र गृह, संपति मेरु समान ।

एक दिन जाय स्वपच गृह सेवत, अंबर हरत मसान ॥ १ ॥

एक दिन दूलह बनत बराती, चहूँ दिसी गढ़त निसान ।

एक दिन डेरा होत जंगलमें, कर सूँघे पगतान ॥ २ ॥

एक दिन सीता रुदन करत है, महा विपिन उद्यान ।

एक दिन रामचन्द्र मिलि दोऊ, बिचरत पुष्प विमान ॥ ३ ॥

एक दिन राजा राज जुधिष्ठिर, अनुचर श्री भगवान ।

एक दिन द्रौपदि नगन होत है, चीर दुसासन तान ॥ ४ ॥

प्रगटत है पूरबकी करनी, तज मन सोच अजान ।

सूरदास गुन कहँ लगि बरनौं, बिधिके अंक प्रमान ॥ ५ ॥

३९

(राग काफी - तीन ताल)

ऊधो, कर्मनकी गति न्यारी – ऊधो.

सब नदियाँ जल भरि-भरि रहियाँ
सागर केहि बिध खारी ॥ ऊधो. ह्व ॥

उज्जवल पंख दिये बगुलाको,
कोयल केहि गुन कारी ।
सुन्दर नयन मृगाको दिन्हे,
बन-बन फिरत उजारी ॥ ऊधो. ह्व ।।

मूरख मूरख राजे किन्हे,
पंडित फिरत भिखारी ।
सूर श्याम मिलनेकी आशा,
छिन-छिन बीतत भारी ॥ ऊधो. ह्व ।।

४.

(राग देस - ताल दादरा)

हे गोविन्द, हे गोपाल, हे गोविन्द राखो शरण

अब तो जीवन हारे ॥ हे गोविन्द ०॥

नीर पीवन हेतु गयो, सिन्धुके किनारे,

सिन्धु बीच बसत ग्राह चरन धरि पछारे ॥ १ ॥

चार प्रहर जुद्ध भयो, लै गयो मँझ धारे,

नाक-कान डुबन लागे, कृष्णको पुकारे ॥ २ ॥

द्वारकामें शब्द गयो, शोर भयो भारे,

शंख-चक्र-गदा-पद्म, गरुड़ लै सिधारे || ३ ॥

सूर कहै श्याम सुनो, शरण हैं तिहारे,

अबकी बार पार करो, नंदके दुलार ॥ ४ ॥

४१

(राग बिहाग ह्व ताल दीपचन्दी)

वृक्षनसे मत ले, मन तू वृक्षनसे मत ले ।
काटे वाको क्रोध न करहीं,
    सिचत न करहिं नेह ॥ मन तू0 ॥
धूप सहत अपने सिर ऊपर,
    औरको छाँह करेत ।
जो वाहीको पथर चलावे,
    ताहीको फल देत ॥ मन तू0 ॥
धन्य धन्य ये पर-उपकारी,
    वृथा मनुजकी देह ।
सूरदास प्रभु कहँ लगि बरनौं,
    हरिजनकी मत ले ॥ मन तू0 ॥

४२

(राग दरबारी कानड़ा - तीन ताल)

घूँघटका पट खोल रे ! तोको पीव मिलेंगे ।
घट घटमें वह साँईं रमता कटुक वचन मत बोल रे ॥
धन-जोबनको गरब न कीजै झूठा पचरँग चोल रे ॥
सुन्न महलमें दियना बारिले आसनसों मत डोल रे ॥
जाग जुगतसों रंग-महलमें पिय पायो अनमोल रे ॥
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे ॥

४३

(राग धनाश्री, भजन केरवाकी धुनमें)

साधो सहज समाध भली

गुरु प्रताप जा दिनसे जागी,

दिन दिन अधिक चली ॥ १ ॥

जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा,

जो कुछ करौं सो सेवा ।

जब सोवौं तब करौं दंडवत,

पूजौं और न देवा ॥ २ ॥

कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन

खावँ पियौं सो पूजा ।

गिरह उजाड़ एक सम लेखौं

भाव मिटावौं दूजा ॥ ३ ॥

आँख न मूँदौं, कान न रूँधौं

तनिक कष्ट नहि धारौं ।

खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि

सुन्दर रूप निहारौं ॥ ४ ॥

सबद निरन्तरसे मन लागा,

मलिन वासना त्यागी ।

ऊठत बैठत कबहूँ न छूटै

ऐसी तारी लागी ॥ ५ ॥

कह कबीर यह उनमुनि रहनी,

सो परगट करि गाई ।

दुख सुखसे कोई परे परमपद,

तेहि पद रहा समाई ॥ ६ ॥

४४

(राग कालिंगड़ा - तीन ताल)

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ? ॥ टेक ॥
हीरा पायो गाँठ गठियायो ।
बार बार वाको क्यों खोले ? ॥ १ ॥
हलकी थी जब चढ़ी तराजू ।
पूरी भई तब क्यों तोले ? ॥ २॥
सुरत कलारी भई मतवारी ।
मदवा पी गई बिन तोले ॥ ३॥
हंसा पाये मान सरोवर ।
ताल तलैया क्यों डोले ? ॥ ४ ॥
तेरा साहिब है घट माँही ।
बाहर नैना क्यों खोले ? ॥ ५॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो ।
साहिब मिल गये तिल ओले ॥६ ॥

४५

(राग कालिंगड़ा - तीन ताल)

मन लागो मेरो यार फ़कीरीमें ।
जो सुख पावो राम भजनमें
सो सुख नाहि अमीरीमें ॥ १ ॥
भला बुरा सबका सुनि लीजै
कर गुजरान गरीबीमें ॥ २ ॥
प्रेम-नगरमें रहनि हमारी
भलि बनि आई सबूरीमें ॥ ३ ॥
हाथमें कूँडी, बगलमें सोटा
चारों दिसि जागीरीमें ॥ ४ ॥
आखिर यह तन खाक मिलेगा
कहा फिरत मगरूरीमें ? ॥ ५ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
साहिब मिलै सबूरीमें ॥ ६ ॥

४६

(राग बिंद्रावनी सारंग-तीन ताल(जलद) अथवा धुमाली)

रहना नहिं देस बिराना है ॥ ध्रु० ॥

यह संसार कागदकी पुड़िया, बूँद पड़े धुल जाना है ॥

यह संसार काँटेकी बाड़ी, उलझ उलझ मरि जाना है ॥

यह संसार झाड़ औ' झाँखर, आग लगे बरि जाना है ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

४७

(राग भैरवी - ताल रूपक)

मत कर मोह तू, हरि-भजनको मान रे ।

नयन दिये दरसन करनेको, श्रवण दिये सुन ज्ञान रे ॥

वदन दिया हरिगुण गानेको, हाथ दिये कर दान रे ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो, कंचन निपजत खान रे ॥

४८

(राग हमीर - तीन ताल)

गुरु बिन कौन बतावे बाट ? बड़ा विकट यमघाट ॥ ध्रु० ॥

भ्रांतिकी पहाड़ी नदिया बिचमों | अहंकारकी लाट ॥ १॥

काम क्रोध दो पर्वत ठाढ़े । लोभ चोर संघात ॥ २॥

मद मत्सरका मेह बरसत | माया पवन बहे दाट ॥ ३॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो । क्यों तरना यह घाट ॥ ४॥

४९

(राग भैरवी - तीन ताल)

झीनी झीनी बिनी चदरिया ॥ ध्रु० ॥
काहे कै ताना, काहे कै भरनी
कौन तारसे बिनी चदरिया ॥
इंगला पिंगला ताना भरनी
सुषमन तारसे बिनी चदरिया ॥
आठ कँवल दस चरखा डोलै
पाँच तत्त, गुन तिनी चदरिया ॥
साँईको सीयत मास दस लागै
ठोक ठोकके बिनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी
ओढ़ीके मैली कीनी चदरिया ॥
दास कबीर जतनसे ओढ़ी

ज्योंकी त्यों धरि दीनी चदरिया ॥

५०

(राग खमाज – धुमाली)

भजो रे भैया राम गोविन्द हरी ॥ ध्रु०॥

जप तप साधन कछु नहिं लागत
खरचत नहि गठरी ॥ १ ॥

संतत संपत सुखके कारण
जासे भूल परी ॥ २ ॥

कहत कबीर जा मुख राम नहि
वो मुख धूल भरी ॥ ३ ॥

५१

(राग आसावरी – दीपचंदी)

मन ! तोहे केहि विध कर समझाऊँ ॥ धु० ॥

सोना होय तो सुहाग मँगाऊँ, बंकवाल रस लाऊँ

ग्यान शब्दकी फूँक चलाऊँ, पानी कर पिघलाऊँ ॥ १ ॥

घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ

होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबुक देके चलाऊँ ॥ २ ॥

हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ

होय महावत तेरे पर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ ॥ ३ ॥

लोहा होय तो एरण मँगाऊँ, ऊपर धुवन धुवाऊँ

धूवनकी घनघोर मचाऊँ, अंतर तार खिंचाऊँ ॥ ४ ॥

ग्यानी होय तो ज्ञान सिखाऊँ, सत्यकी राह चलाऊँ

कहत कबीर सुनो भाई साधु, अमरापुर पहुँचाऊँ ॥ ५ ॥

५२

(राग मालकंस – झपताल)

शूर संग्रामको देख भागै नहीं,
देख भागै सोई शूर नाहीं ॥
काम औ' क्रोध, मद, लोभसे जूझना,
मँडा घमसान तहँ खेत माहीं ॥
शील औ' शौच, संतोष साही भये,
नाम समसेर तहँ खूब बाजे ॥
कहे कबीर कोई जूझि है शूरमा,
कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥

५३

(राग बिहाग - तीन ताल)

नहीं छोड़ूँ रे बाबा रामनाम,

मेरी और पढ़नसों नहीं काम ॥ ध्रु० ॥

प्रह्लाद पठाये पढ़न शाल,

संग सखा बहु लिये बाल ।

मोको कहा पढ़ावत आलजाल,

मेरी पटिया पै लिख देउ श्रीगोपाल ॥ १ ॥

यह षंडामरके कह्यो जाय,

प्रह्लाद बुलाये वेग धाय ।

तू राम कहनकी छोड़ बान,

तुझे तुरत छुड़ाऊँ कहो मान ॥ २ ॥

मोको कहा सतावो बार-बार,

प्रभु जल थल नभ कीन्हे पहार ।

एक राम न छोडूँ गुरुहि गार,

मोको घाल जार चाहे मार डार ॥ ३ ॥

काढ़ खड्ग कोप्यो रिसाय,

कहँ राखनहारो मोहि बताय ।

प्रभु खंभसे निकसे है विस्तार,

हरिणाकुश छेद्यो नख विदार ॥ ४ ॥

श्री परम-पुरुष देवाधिदेव,

भक्तहेत नरसिंह भेख ।

कहे कबीर कोऊ लख न पार,

प्रह्लाद उबारे अनेक बार ॥ ५ ॥

५४

(राग भैरवी ह्न ताल केरवा)

बीत गये दिन भजन बिना रे ॥ ध्रु० ॥

बाल-अवस्था खेल गँवाई,

जब जोबन तब मान घना रे ॥ १ ॥

लाहे कारन मूल गँवायो,

अजहुँ न गई मनकी तृस्ना रे ॥ २ ॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो,

पार उतर गये सन्त जना रे ॥ ३ ॥

५५

(राग भीमपलासी - तीन ताल)

समझ बूझ दिल खोज पियारे,
आशिक होकर सोना क्या ?॥ ध्रु० ॥
जिन नैनोंसे नींद गँवाई,
तकिया लेफ बिछौना क्या ? ॥ १ ॥
रूखा सूखा रामका टुकड़ा,
चिकना और सलोना क्या ? ॥ २ ॥
कहत कमाल प्रेमके मारग,
सीस दिया फिर रोना क्या ? ॥ ३ ॥।

५६

(राग आसा – दीपचन्दी)

ठाकुर तुम शरणाई आया ।

उतरि गयो मेरे मनका संशा

जबते दरशन पाया ॥ ध्रु० ॥

अनबोलत मेरी बिरथा जानी

अपना नाम जपाया ।

दुख नाठे सुख सहजि समाये

अनंद अनंद गुण गाया ॥ १ ॥

बाँह पकरि कढ़ि लीने अखुने

गृह अंध कूपते माया ।

कहु नानक गुरु बन्धन काटे

बिछुरत आनि मिलाया ॥ २ ॥

५७

(राग मल्हार - तीन ताल)

साधो मनका मान त्यागो ।

काम क्रोध संगत दुर्जनकी, ताते अहनिस भागो ॥ ध्रु० ॥

सुख दुख दोनों सम करि जानै, और मान अपमाना ।

हर्ष शोक ते रहै अतीता, तिन जग तत्त्व पिछाना ॥१॥

अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागे, खोजै पद निरवाना ।

जन नानक यह खेल कठिन है, कोऊ गुरु-मुख जाना ॥२॥

५८

(राग शंकरा - ताल तेवरा)

बिसर गई सब तात पराई ।

जब ते साधु-संगत मोहिं पाई ॥ ध्रु० ॥

ना को बैरी नाहि बिगाना,

सकल संगि हमकौ बनि आई ॥ १ ॥

जो प्रभु कीन्हो सो भल मान्यो,

एक सुमति साधुन तें पाई ॥ २ ॥

सब महं रम रहिया प्रभु एकै,

पेखि पेखि नानक बिगसाई ॥ ३ ॥

५९

(राग शंकरा - तीन ताल)

काहे रे ! बन खोजन जाई ।

सर्व-निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥ ध्रु० ॥

पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माहि जस छाई ।

तैसे ही हरि बसैं निरंतर, घट ही खोजो भाई ॥ १ ॥

बाहर भीतर एकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई ।

जन नानक बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रमकी काई ॥ २ ॥

६०

(राग दुर्गा - ताल केरवा)

रे मन ! रामसो कर प्रीत ॥ ध्रु० ॥

श्रवन गोविन्द-गुन सुनो

अरु गाउ रसना गीत ॥१॥

कर साधु-संगत सुमिर माधो

होय पतित पुनीत ॥२॥

काल व्याल ज्यों पर्यो डोले

मुख पसारे मीत ॥३॥

आजकल पुनि तौहि ग्रसिहै

समझ राखो चीत ॥४॥

कहे नानक राम भज ले

जात अवसर बीत ॥५॥

६१

(राग कौशिया - विलंबित, तीन ताल)

सुमरन कर ले मेरे मना ।

तेरी बिति जाति उमर, हरिनामबिना ॥ ध्रु० ॥

कूप नीर बिनु , धेनु छीर बिनु , धरती मेहबिना ।

जैसे तरुवर फलबिन हीना, तैसे प्राणी हरिनामबिना ।।

देह नैनबिन, रैन चन्दबिन, मन्दिर दीपबिना ।

जैसे पंडित वेद बिहीना, तैसे प्राणी हरिनामबिना ।।

काम क्रोध मद लोभ निहारो छाँड़ दे अब संतजना ।

कहे नानकशा, सुन बुधमंता या जगमें नहिं कोई अपना ॥

६२

(राग बिहाग - तीन ताल)

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?

क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा,

सत्यवचन क्यों छोड़ दिया ? ॥ ध्रु० ॥

झूठे जगमें दिल ललचा कर

असल वतन क्यों छोड़ दिया ?

कौड़ीको तो खूब सम्हाला

लाल रतन क्यों छोड़ दिया ? ॥१॥

जिहि सुमिरन ते अति सुख पावे

सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?

खालस इक भगवान भरोसे

तन, मन, धन क्यों न छोड़ दिया? ॥ २ ॥

६३

(राग मुलतानी - तीन ताल)

मनकी मन ही माँहि रही ।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे
चोटी काल गही ॥ ध्रु० ॥

दारा, मीत, पूत, रथ, संपति,
धन-जन-पूर्ण मही ।
और सकल मिथ्या यह जानो
भजना राम सही ॥ १ ॥

फिरत फिरत बहुते जुग हार्यो
मानस देह लही ।
नानक कहत मिलतकी बिरियाँ
सुमिरत कहा नहीं ? ॥ २ ॥

६४

(राग तिलक कामोद - तीन ताल)

पायो जी म्हेंतो राम-रतन धन पायो ॥ टेक ॥

वस्तु अमोलिक दी म्हांरे सतगुरु,
किरपा कर अपनायो ॥ १ ॥

जनम जनमकी पूँजी पाई,
जगमें सभी खोवायो ॥ २ ॥

खरचै न खूटै, वाको चोर न लूटै,
दिन दिन बढ़त सवायो ॥ ३ ॥

सतकी नाव, खेवटिया सतगुरु,
भवसागर तर आयो ॥ ४ ॥

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
हरख हरख जस गायो ॥ ५ ॥

६५

(राग मालकंस - तीन ताल)

मोहि लागी लटक गुरु-चरननकी ॥ ध्रु० ॥

चरन बिना मुझे कछु नहीं भावे,

जग माया सब सपननकी ॥ १ ॥

भवसागर सब सूख गया है,

फिकर नहीं मुझे तरननकी ॥ २ ॥

मीरां कहे प्रभु गिरिधर नागर !

उलट भई मोरे नयननकी ॥ ३ ॥

६६

(राग देस या पूर्वी - तीन ताल)

नहि ऐसो जन्म बारंबार ।

क्या जानूं कछु पुन्य प्रकटे मानुसा अवतार ॥ ध्रु० ॥

बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, चलत न लागे बार ।

बिरछके ज्यों पात टूटे लागे नहिं पुनि डार ॥ १ ॥

भवसागर अति जोर कहिये विषम ओखी धार ।

सुरतका नर बाँधे बेड़ा बेगि उतरे पार ॥ २ ॥

साधु संत महंत ज्ञानी चलत करत पुकार ।

दासि मीरां लाल गिरिधर जीवना दिन चार ॥ ३ ॥

६७

(राग झिंझोटी - ताल दादरा)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई, साधो, सकल लोक जोई ॥ ध्रु० ॥
भाई छोड़्या, बंधु छोड़्या, छोड़्या सगा सोई ।
साधु संग बैठ बैठ लोक-लाज खोई ॥१॥
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई ।
अँसुवन जल सींच सींच प्रेम-बेलि बोई ॥२॥।
दधि मथ घृत काढ़ि लियो, डार दई छोई ।
राणा विषको प्यालो भेज्यो, पीय मगन होई ॥ ३ ॥
अब तो बात फैल पड़ी, जाणे सब कोई ।
मीरां एम लगण लागी, होनी होय सो होई ॥४॥

६८

(राग झिंझोटी - खमाज - ताल धुमाली)

मेरे राणाजी, मैं गोविन्द-गूण गाना ॥ ध्रु० ॥

राजा रूठे नगरी रक्खे अपनी,

मैं हर रूठ्या कहाँ जाना ? ॥ १ ॥

राणे भेज्या जहर पियाला,

मैं अमृत कह पी जाना ॥ २ ॥

डबियामें काला नाग भेजा,

मैं शालग्राम कर जाना ॥ ३ ॥

मीरांबाई प्रेम-दीवानी,

मैं साँवलिया वर पाना ॥ ४ ॥

६९

(राग अडाणा - ताल तेवरा)

हरि ! तुम हरो जनकी भीर ॥ टेक ॥

द्रौपदीकी लाज राखी,

तुम बढ़ायो चीर ॥ १ ॥

भक्त कारन रूप नरहरि,

धर्यो आप शरीर ॥ २ ॥

हरिनकश्यप मार लीन्हो,

धर्यो नाँहिन धीर ॥ ३ ॥

बूड़ते गजराज राख्यो,

कियो बाहर नीर ॥ ४ ॥

दासि मीरां लाल गिरधर,

दुख जहाँ तहाँ पीर ॥ ५ ॥

७०

(राग माँड - ताल धुमाली अथवा तेवरा)

म्हाँने चाकर राखो जी !

गिरिधारी लला ! चाकर राखो जी ॥ टेक ॥

चाकर रहसूँ, बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ ।
वृन्दावनकी कुंज गलिनमें, गोविन्द-लीला गासूँ ॥ १॥
चाकरीमें दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची |
भाव-भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी ॥ २॥
मोर मुकट, पीताम्बर सोहे, गले बैजंती माला |
वृन्दावनमें धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला ॥३॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी ।
साँवरियाके दरसन पाऊँ, पहिर कसुम्बी सारी ॥४ ॥
जोगी आया जोग करनकूँ, तप करने संन्यासी ।
हरी-भजनकूँ साधू आये, वृन्दावनके वासी ॥५ ॥
मीरांके प्रभु गहिर गंभीरा, हृदे रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हों, जमुनाजीके तीरा ॥ ६ ॥।

७१

(राग माँड - ताल दादरा)

माई मैंने गोविन्द लीनो मोल । गोविन्द लीनो मोल ॥ ध्रु० ॥
कोई कहे सस्ता, कोई कहे महँगा, लीनो तराजू तोल ॥१॥
कोई कहे घरमें, कोई कहे बनमें, राधाके संग खिलोल ॥२॥
मीरांके प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेमके डोल ॥ ३॥

७२

(राग काफी - तीन ताल)

राम-नाम-रस पीजै,
मनुआ राम-नाम-रस पीजै ।
तज कुसंग सत-संग बैठ नित,
हरि-चरचा सुनि लीजै ॥
काम क्रोध मद लोभ मोहकूँ,
बहा चित्ततों दीजै ।
मीरांके प्रभु गिरधर नागर,
ताहिके रंगमें भीजै ॥

७३

(राग बागेश्री - तीन ताल)

अजहूँ न निकसै प्राण कठोर ! ॥ टेक ॥

दरसन बिना बहुत दिन बीते,

सुन्दर प्रीतम मोर ॥ १॥

चारि पहर चारौं जुग बीते,

रैनि गँवाई भोर ॥ २ ॥

अवधि गई अजहूँ नहिं आये,

कतहुँ रहे चितचोर !॥३ ॥

कबहुँ नैन निरखि नहिं देखे,

मारग चितवत चोर ।। ४ ॥।

दादू ऐसे आतुर बिरहिणी,

जैसे चंद चकोर ॥ ५ ||

७४

(राग कौशिया - तीन ताल)

प्रभुजी ! तुम चंदन, हम पानी
जाकी अँग अँग वास समानी ॥ ध्रु० ॥
प्रभुजी, तुम धन बन, हम मोरा
जैसे चितवत चंद चकोरा ॥१॥
प्रभुजी, तुम दीपक, हम बाती
जाकी जोति बरै दिन राती ॥२॥
प्रभुजी, तुम मोती, हम धागा
जैसे सोनहि मिलत सुहागा ॥३॥
प्रभुजी, तुम स्वामी, हम दासा
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥४॥

७५

(राग भैरवी - तीन ताल)

नरहरि! चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी? ॥
तू मोहिं देखै, हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ।
तू मोहिं देखै, तोहिं न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ।
गुन सब तोर, मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों कैसे करि निस्तारा ?
कह रैदास कृष्ण करुणामय जै जै जगत-अधारा ! ॥

७६

(राग आसा - पहाड़ी, गज़ल धुन)

क्यों सोया ग़फ़लतका माता, जाग रे नर जाग रे |
या जागे कोई जोगी भोगी, या जागे कोई चोर रे ।
या जागे कोई संत पियारा, लगी रामसों डोर रे ॥
ऐसी जागन जाग पियारे ! जैसी ध्रुव प्रह्लाद रे ।
ध्रुवको दीनी अटल पदवी, प्रह्लादको राज रे ॥
मन है मुसाफ़िर, तनुका सरा बिच, तू कीता अनुराग रे ।
रैनि बसेरा कर ले डेरा, उठ चलना परभात रे ॥
साधु-संगत सतगुरुकी सेवा, पावे अचल सुहाग रे ।
नितानन्द भज राम, गुमानी ! जागत पूरन भाग रे ॥

७७

(राग बिभास - तीन ताल)

अकल कला खेलत नर ज्ञानी !
जैसे हि नाव हिरे फिरे दसों दिश,
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ॥ ध्रु० ॥
चलन वलन अवनी पर वाकी
मनकी सुरत अकाश ठहरानी ॥
तत्त्व-समास भयो है स्वतंतर,
जैसे हिम होत है पानी ॥ अकल0 ॥ १ ॥
छुपी आदि अन्त नहिं पायो
जाइ न सकत जहाँ मन बानी ||
ता घर स्थिती भई है जिनकी
कहि न जात ऐसी अकथ कहानी ||अकल0॥ २ ॥
अजब खेल अद्भुत अनुपम
जाको है पहिचान पुरानी ||
गगनहि गैब भया नर बोले
एहि अखा जानत कोई ज्ञानी ॥ अकल0 ॥ ३ ॥

७८

(राग बहार - ताल विलंबित - तीन ताल)

अब हौं कासों बैर करौं ?

कहत पुकारत प्रभु निज मुखते ।

"घट घट हौं बिहरौं" ॥ ध्रु० ॥

आप समान सबै जग लेखों ।

भक्तन अधिक डरौं ॥

श्रीहरिदास कृपाते हरिकी

नित निर्भय विचरौं || १ ॥

७९

(राग देस - ताल तेवरा)

कोई वन्दो, कोई निन्दो, कोई कैसे कहो रे ।
रघुनाथ साथे प्रीत बाँधी, होय तैसे होय रे ॥ ध्रु०॥
कमल म्याने मोट बाँधी, नीर था भरपुर रे |
रामचन्द्रने कूर्म होकर राख लीनी पीठ रे ॥१॥
चंद्र सूर्य जिमि ज्योत, स्तंभ बिनु आकाश रे ।
जल ऊपर पाषाण तारे, क्यों न तारे दास रे ? ॥ २ ॥
जपत शिव, सनकादि मुनिजन नारदादि संत रे ।
जन्म जन्मके स्वामी रघुपति दास जनि जसवंत रे ॥ ३॥

८०

(राग भैरवी - तीन ताल)

संत परम हितकारी, जगत माँही ॥ ध्रु० ॥

प्रभुपद प्रकट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी ॥१॥

परम कृपालु सकल जीवनपर, हरि सम सब दुखहारी ॥ २॥

त्रिगुणातीत फिरत तन त्यागी, रीत जगतसे न्यारी ॥ ३ ॥

ब्रह्मानन्द संतनकी सोबत, मिलत है प्रगट मुरारी || ४ ॥

८९

(राग भैरव - तीन ताल)

नंद-भवनको भूखन माई
यशोदाको लाल, वीर हलधरको,
राधारमन परम सुखदायी ॥ ध्रु० ॥
शिवको धन, संतनको सर्वस, ॥१॥
महिमा वेद-पुरानन गाई ।
इन्द्रको इन्द्र, देव देवनको,
ब्रह्मको ब्रह्म, अधिक अधिकाई ॥१ ॥
कालको काल, ईश ईशनको,
अति हि अतुल तोल्यो नहीं जाई ।
नन्ददासको जीवन गिरिधर,
गोकुल-गामको कुँवर कन्हाई ॥२॥

८२

(राग बिहाग - तीन ताल)

बिसर न जाजो मेरे मीत,
यह वर माँगूँ मैं नीत ॥ ध्रु० ॥
मैं मतिमंद कछू नहि जानूँ,
नहिं कछु तुम सँग हीन |
बाँह गहेकी लाज है तुमको,
तुम सँग मेरी जीत ॥१॥
तुम रीझो ऐसो गुण नाहीं,
अवगुणकी हूँ भीत ।
अवगुण जानि बिसारोगे जीवन,
होऊँगी मैं बहुत फजीत ॥२॥
मेरे दृढ़ भरोसो जियमें,
तजिहौ न मोहन प्रीत ।

जन अवगुण प्रभु मानत नाहीं,

यह पूरबकी रीत ॥३॥

दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ,

गाऊँ निसिदिन गीत ।

प्रेमसखी समझूँ नहिं ऊँडी,

एक भरोसो चीत ॥४॥

८३

(राग भैरवी - तीन ताल)

हो रसिया, मैं तो शरण तिहारी,

नहिं साधन बल बचन चातुरी,

एक भरोसो चरणे गिरिधारी ॥ ध्रु० ॥

कडुइ तुंबरिया मैं तो नीच भूमिकी,

गुण-सागर पिया तुम हि सँवारी ॥१ ॥

मैं अति दीन बालक तुम सरन,

नाथ न दीजे अनाथ बिसारी ! ॥ २ ॥

निज-जन जानि सँभालोगे प्रीतम,

प्रेमसखी नित जाऊँ बलिहारी ॥ ३ ॥

८४

(राग तिलंग - तीन ताल)

मैं तो बिरद भरोसे बहुनामी ।

सेवा सुमिरन कछुवे न जानूँ,

सुनियो परमगुरु स्वामी ॥ ध्रु० ॥

गज अरु गीध तारि है गणिका,

कुटिल अजामिल कामी ॥ १ ॥

यही साख श्रवणे सुनि आयो,

चरण-शरण सुखधामी ॥ २ ॥

प्रेमानन्द तारो के मारो,

समरथ अन्तरयामी ॥ ३ ॥

८५

(राग सारंग - तीन ताल)

दरसन देना प्रान-पियारे !

नन्दलाला मेरे नैनोंके तारे ॥ ध्रु० ॥

दीनानाथ दयाल सकल गुण,

नवकिशोर सुन्दर मुखवारे || १ ॥

मनमोहन मन रुकत न रोक्यो,

दरशनकी चित्त चाह हमारे ॥ २ ॥

रसिक खुशाल मिलनकी आशा,

निशिदिन सुमरन ध्यान लगारे || ३ ॥

८६

(राग बिहाग - तीन ताल)

चेतन ! अब मोहिं दर्शन दीजे ।

तुम दर्शन शिव सुख पामीजे,

तुम दर्शन भव छीजे ॥ ध्रु० ॥

तुम कारन तप संयम किरिया, कहो कहाँ लौं कीजे ?

तुम दर्शन बिनु सब या जूठी, अंतर चित्त न भीजे॥ १॥

क्रिया मूढ़मति कहे जन कोई, ज्ञान औरको प्यारो,

मिलत भाव रस दोउ न भाखे, तू दोनोंते न्यारो ॥ २ ॥

सबमें है और सबमें नाहीं, पूरन रूप अकेलो,

आप स्वभावे वे किम रमतो ? तू गुरू अरु तू चेलो ॥ ३ ॥

अकल अलख प्रभु ! तू सब रूपी, तू अपनी गति जाने,

अगम रूप आगम अनुसारे, सेवक सुजस बखाने ॥ ४ ॥

८७

(राग केदार - तीन ताल)

राम कहो, रहमान कहो कोऊ, कान्ह कहो, महादेव री
पारसनाथ कहो, कोऊ ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥ ध्रु०॥
भाजन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री
तैसे खंड कल्पनारोपित, आप अखंड सरूप री ॥ १ ॥
निजपद रमे राम सो कहिये, रहिम करे रहिमान री
कर्षे करम कान्ह सो कहिये, महादेव निर्वाण री ॥ २ ॥
परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री
इह विधि साधो आप आनन्दधन,
चेतनमय निकर्मरी || ३ ॥

८८

(राग अड़ाणा - ताल झुमरा)

नैया मेरी तनकसी, बोझी पाथर भार ।
चहुँ दिसि अति भँवरें उठत, केवट है मतवार ॥ ध्रु० ॥
केवट है मतवार, नाव मँझधारहि आनी ।
आँधी उठी प्रचँड, तेहुँ पर बरसत पानी ! ॥ १ ॥
कह गिरधर कविराय, नाथ हो तुमहि खेवैया ।
उठे दयाको डाँड, घाट पर आवे नैया ॥ २ ॥

८९

(राग पीलु - ताल दीपचंदी)

गुरु-कृपांजन पायो मेरे भाई
राम बिना कछु जानत नाहीं ॥ ध्रु० ॥

अंतर राम हि बाहिर राम हि
जहँ देखो तहँ राम ही राम हि ॥१॥

जागत राम हि सोवत राम हि
सपनेमें देखौं राजा राम हि॥२॥

एका जनार्दनीं भाव ही नीका
जो देखौं सो राम सरीखा ॥ ३ ॥

९०

(राग गारा - तीन ताल, पंजाबी ठेका)

गोपाला मेरी करुणा क्यों नहीं आवे ॥ ध्रु० ॥

घड़ी घड़ी पल पल छन न बिसारूँ ।

तुमको दया क्यों नहीं आवे ॥ १ ॥

हम पतित, तुम पतित-उधारन ।

अंतर सार बतावे ॥ २ ॥

निधिरामजीको संत मतो है ।

गुरु बिन कौन छुड़ावे ॥ ३ ॥

९१

(राग भैरवी - तीन ताल)

हे जग-त्राता विश्व-विधाता,

हे सुख-शान्ति-निकेतन हे !

प्रेमके सिन्धो, दीनके बन्धो,

दुःख-दरिद्र-विनाशन हे ! ॥ ध्रु० ॥

नित्य, अखंड, अनंत, अनादि,

पूरण ब्रह्म, सनातन हे !

जग-आश्रय, जग-पति, जग-वंदन,

अनुपम, अलख, निरंजन हे !

प्राणसखा, त्रिभुवन-प्रतिपालक,

जीवनके अवलंबन हे ! ॥ १ ॥

९२

(राग पहाड़ी माँड - ताल कवाली)

उठ जाग मुसाफिर भोर भई
अब रैन कहाँ जो सोवत है ॥ ध्रु० ॥
जो सोवत है सो खोवत है
जो जागत है सो पावत है ॥ १ ॥
टुक नींदसे अखियाँ खोल जरा,
ओ गाफ़िल, रबसे ध्यान लगा ।
यह प्रीत करनकी रीत नहीं,
रब जागत है तू सोवत है ॥ २ ॥
अय जान, भुगत करनी अपनी,
ओ पापी, पापमें चैन कहाँ ?
जब पापकी गठरी सीस धरी,
फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है ?॥३ ॥
जो काल करे सो आज कर ले,
जो आज करे सो अब कर ले ।
जब चिडियन खेती चुगि डाली,
फिर पछताये क्या होवत है ? ॥४॥

९३

(राग खमाज - तीन ताल)

क्यों मन जीवन-सार बिसारा ?

विषय-परायण होय जगत महँ

फिरै अन्ध मतवारा ॥

धन-दारा-सुत काम न आवैं,

जिनपै कियो सहारा ।

जिस जगमें तू भूल रहा है,

दो दिनका है गुज़ारा ॥

९४

जय जगदीश हरे !
भक्त जनोंका संकट छिनमें दूर कर ॥ ध्रु० ॥
जो ध्यावे फल पावे दुख विनसे मनका
सुख संपति गृह आवे, कष्ट मिटे तनका
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी,
तुम बिन और न दूजा, आश करूँ जिसकी -जय0 ॥१॥
तुम पूरन परमात्मा, तुम अन्तरयामी
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी
तुम करुणाके सागर, तुम पालनकर्ता
मैं मूरक, खल, कामी, कृपा करो भर्ता -जय0 ॥ २ ॥
तुम हो एक अगोचर, सबके प्राण-पति
किस विध मिलूँ गुसाईं, तुमको मैं कुमति
दीन-बन्धु दुख-हरता, ठाकुर तुम मेरे
अपने हाथ उठाओ, द्वार परो तेरे
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तनकी सेवा -जय0 ॥३॥

९५

(राग मिश्र काफी - तीन ताल)

मेरो मन सकल सुखों पर धावे

कोई सुख हाथ न आवे - मेरो मन0 ।

सेमरकी सेवा कर जैसे

सुआ बैठ पछतावे ।

साचो सुख दुखके भीतर है

कौन इसे समझावे - मेरो मन0 ।

९६

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे
जिसका नाम पतित-पावन है,
जिसे दीन अति प्यारे ॥ ह्र जाऊँ0 ।
तन दे डारा, मन दे डारा
दे डारा जो कुछ था सारा
इन चरननका लिया सहारा
कह दो तुम हो हमारे। ह्र जाऊँ0 ।

९७

(राग झिंझोटी)

आया द्वार तुम्हारे रामा !

आया द्वार तुम्हारे ।

जब जब भीर परी भक्तन पर

तुमने ही दुख टारे,

रामा ! तुमने ही दुख टारे ॥

मनमें छाया गहन अँधेरा

दीपक जैसा कौन उजारे,

रामा ! दीपक जैसा कौन उजारे ॥

नैया मोरी बीच भँवरमें

तू ही पार उतारे

रामा ! तू ही पार उतारे ॥

९८

(राग ग़ज़ल)

अगर है शौक़ मिलनेका, तो हरदम लौ लगाता जा ।
जलाकर खुदनुमाईको, भसम तन पर लगाता जा ॥
पकड़कर इश्ककी झाड़ू, सफ़ा कर हिज्र-ए दिलको ।
दुईकी धूलको लेकर, मुसल्ले पर उड़ाता जा ॥
मुसल्ला छोड़, तसबी तोड़, किताबें डाल पानीमें ।
पकड़ दस्त तू फ़रिश्तोंका, गुलाम उनका कहाता जा ॥
न मर भूखा, न रख रोज़ा, न जा मस्जिद, न कर सिजदा।
वजूका तोड़ दे कूज़ा, शराबे-शौक़ पीता जा ॥
हमेशा खा, हमेशा पी, न ग़फ़लतसे रहो इकदम ।
नशेमें सैर कर अपनी, खुदीको तू जलाता जा ॥
न हो मुल्ला, न हो बम्मन, दुईकी छोड़कर पूजा ।
हुक्म है शाह कलंदरका, 'अनलहक़' तू कहाता जा ॥
कहे मंसूर मस्ताना, हक़ मैंने दिलमें पहचाना ।
वही मस्तोंका मयखाना, उसीके बीच आता जा ॥

९९

(राग ग़ज़ल)

है बहारे बाग़ दुनिया चंद रोज़ !
देख लो इसका तमाशा चंद रोज़ ॥
ऐ मुसाफ़िर ! कूचका सामान कर ।
इस जहाँमें है बसेरा चंद रोज़ ॥
पूछा लुकमाँसे, जिया तू कितने रोज़ ?
दस्ते हसरत मलके बोला 'चंद रोज़' |
बाद मदफ़न क़ब्रमें बोली क़ज़ा ।
अब यहाँपे सोते रहना चंद रोज़ ॥
फिर तुम कहाँ औ' मैं कहाँ, ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़ ॥
क्यों सताते हो दिले बेजुर्मको ।
ज़ालिमो, है ये ज़माना चंद रोज़ ॥
याद कर तू ऐ नज़ीर कबरोंके रोज़ ।
ज़िन्दगीका है भरोसा चंद रोज़ ॥

१००

(राग ग़ज़ल, सिंध काफी)

बस, अब मेरे दिलमें बसा एक तू है ॥
मेरे दिलका अब दिलरुबा एक तू है ॥
फ़क़त तेरे क़दमोंसे अय मेरे ख़ालिक ॥
लगा अब मेरा ध्यान शामो सुबू है ॥
मेरा दिल तो तुझसे हि पाता है तसकीं ॥
बसी मग्ज़में प्रेमके तेरी बू है ॥
समझते हैं यूँ मुझको अकसर दिवाना ॥
तेरा ज़िक्र विरदे ज़बाँ कूबकू है ॥
नहीं मुझको दुनयवी खुशबूसे उलफ़त ॥
तेरा प्रेम ही अब मेरा मुश्को बू है ॥
रँगूँ प्रेससे तेरे दिलका ये चोला ॥
जिसे ज्ञानसे अब किया कुछ रफ़ू है ॥
न पाला पड़े नफ़्से शैताँसे मुझको ॥
तेरे दासकी अब यही आरजू है ॥

१०१

(राग ग़ज़ल, भैरवी)

अजब तेरा क़ानून देखा, खुदा या !
जहाँ दिल दिया फिर वहीं तुझको पाया ॥
न याँ देखा जाता है मंदिर औ' मसजिद ।
फ़क़त यह कि तालिब सिदक दिलसे आया ॥
जो तुझपै फ़िदा दिल हुआ एक बारी ।
उसे प्रेमका तूने जलवा दिखाया ॥
तेरी पाक सीरतका आशिक़ हुआ जो ।
वही रँग रँगा फिर जो तूने रँगाया ॥
है गुमराह, जिस दिलमें बाकी खुदी है ।
मिला तुझसे जिसने खुदीको गँवाया ॥
हुआ तेरे विश्वासीको तेरा दरसन ।
गदाको दुरे बेबहा हाथ आया ॥

गुजराती भजन

१०२

(राग खमाज ह्न ताल धुमाळी)

वैष्णव जन तो तेने कहीए, जे पीड पराई जाणे रे;
परदु:खे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे. ध्रु०
सकळ लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चळ राखे, धन धन जननी तेनी रे. १
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे.२
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामनामशुं ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तनमां रे. ३
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैंयो तेनुं दरसन करतां, कुळ एकोतेर तार्यां रे, ४

१०३

(राग खमाज ह्व ताल धुमाळी)

भूतळ भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्म-लोकमां नाहि रे,
पुण्य करी अमरापुरी पाम्या, अन्ते चोराशी मांही रे. ध्रु०
हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मागे जनमो-जनम अवतार रे;
नित सेवा, नित कीर्तन ओच्छव, नीरखवा नन्दकुमार रे. १
भरतखंड भूतळमां जनमी, जेणे गोविन्दना गुण गाया रे;
धन धन रे एनां मातपिताने, सफळ करी एणे काया रे. २
धन वृन्दावन, धन ए लीला, धन ए व्रजनां वासी रे;
अष्ट महासिद्धि आंगणिये रे ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे. ३
ए रसनो स्वाद शंकर जाणे, के जाणे शुकजोगी रे;
कंई एक जाणे व्रजनी रे गोपी, भणे नरसैंयो भोगी रे. ४

१०४

(राग खमाज ह्न ताल धुमाळी)

नारायणनुं नाम ज लेतां वारे तेने तजीए रे;
मनसा वाचा कर्मणा करीने लक्ष्मीवरने भजीए रे. ध्रु०
कुळने तजीए, कुटुम्बने तजीए, तजीए मा ने बाप रे;
भगिनी सुत दाराने तजीए, जेम तजे कंचुकी साप रे. १
प्रथम पिता प्रह्लादे तजियो, नव तजियुं हरिनुं नाम रे;
भरत शत्रुघ्ने तजी जनेता, नव तजिया श्रीराम रे. २
ऋषि-पत्नीए श्रीहरि काजे, तजिया निज भरथार रे;
तेमां तेनुं कंईये न गयुं , पामी पदारथ चार रे. ३
व्रज-वनिता विठ्ठलने काजे, सर्व तजीने चाली रे;
भणे नरसैंयो वृन्दावनमां, मोहन साथे महाली रे. ४

१०५

(राग आसा मांड ह्न ताल झपताल)

समरने श्रीहरि, मेल ममता परी,
जोने विचारीने मूळ तारूं;
तुं अल्या कोण ने कोने वळगी रह्यो ?
वगर समज्ये कहे मारुं मारुं. १
देह तारी नथी, जो तुं जुगते करी,
राखतां नव रहे निश्चे जाये;
देहसंबंध तज्ये अवनवा बहु थशे,
पुत्र कलत्र परिवार वहाये. २
धन तणुं ध्यान तुं अहोनिश आदरे,
ए ज तारे अंतराय मोटी;
पासे छे पियु अल्या, तेने नव परखियो,
हाथथी बाजी गई, थयो रे खोटी. ३
भरनिद्रा भर्यो रूंधी घेर्यो घणो,
संतना शब्द सुणी कां न जागे ?
न जागता नरसैंयो लाज छे अति घणी,
जनमो-जनम तारी खांत भागे. ४

१०६

(राग आसा मांड ह्न ताल झपताल)

अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्रीहरि,
जूजवे रूपे अनंत भासे;
देहमां देव तुं, तेजमां तत्त्व तु ,
शून्यमां शब्द थई वेद वासे. १
पवन तुं , पाणी तुं , भूमि तुं , भूधरा,
वृक्ष थई फूली रह्यो आकाशे;
विविध रचना करी अनेक रस लेवाने,
शिव थकी जीव थयो ए ज आशे. २
वेद तो एम वदे, श्रुति-स्मृति साख दे ह्न
कनक कुष्डल विषे भेद न्होये;
घाट घडिया पछी नामरूप जूजवां,
अंते तो हेमनुं हेम होये. ३
वृक्षमां बीज तुं , बीजमां वृक्ष तुं ,
जोउं पटंतरो ए ज पासे ;
भणे नरसैंयो ए मन तणी शोचना,
प्रीत करुं प्रेमथी प्रगट थाशे. ४

१०७

(राग आसा मांड ह्व ताल झपताल)

ज्यां लगी आतमा-तत्त्व चीन्यो नहि
त्यां लगी साधना सर्व जूठी,
मानुषा-देह तारो एम एळे गयो
मावठानी जेम वृष्टि वूठी. १
शुं थयुं स्नान, पूजा ने सेवा थकी,
शुं थयुं घेर रही दान दीधे ?
शुं थयुं धरी जटा भस्म लेपन कर्ये,
शुं थयुं वाळ लोचन कीधे ? २
शुं थयुं तप ने तीरथ कीधा थकी,
शुं थयुं माळ ग्रही नाम लीधे ?
शुं थयुं तिलक ने तुळसी धार्या थकी,
शुं थयुं गंगजल पान कीधे ? ३

शुं थयुं वेद व्याकरण वाणी वद्ये,

शुं थयुं राग ने रंग जाण्ये ?

शुं थयुं खट दरशन सेव्या थकी,

शुं थयुं वरणना भेद आण्ये ? ४

ए छे परपंच सहु पेट भरवा तणा,

आतमाराम परिब्रह्म न जोयो;

भणे नरसैंयो के तत्त्व-दर्शन विना

रत्न-चिंतामणि जन्म खोयो. ५

१०८

(राग आसा मांड ह्व ताल झपताल)

जे गमे जगत-गुरु देव जगदीशने

ते तणो खरखरो फोक करवो ;

आपणो चिंतव्यो अर्थ कांई नव सरे,

ऊगरे एक उद्वेग धरवो. १

हुं करुं, हुं करुं, ए ज अज्ञानता

शकटनो भार जेम श्वान ताणे;

सृष्टि मंडाण छे सर्व एणी पेरे

जोगी जोगेश्वरा कोईक जाणे. २

नीपजे नरथी तो कोई न रहे दुखी

शत्रु मारीने सौ मित्र राखे;

राय ने रंक कोई दृष्टे आवे नहि,

भवन पर भवन पर छत्र दाखे. ३

ऋतु लता पत्र फळ फूल आपे यथा,

मानवी मूर्ख मन व्यर्थ शोचे;

जेहना भाग्यमां जे समे जे लख्युं

तेहने ते समे ते ज पहोंचे. ४

ग्रन्थ गरबड करी वात न करी खरी

जेहने जे गमे तेने पूजे,

मन कर्म वचनथी आप मानी लहे

सत्य छे ए ज मन एम सूझे. ५

सुख संसारी मिथ्या करी मानजो

कृष्ण विना बीजुं सर्व काचुं ;

जुगल करजोडी करी नरसैंयो एम कहे,

जन्म प्रतिजन्म हरिने ज जाचुं. ६

१०९

(राग आसा मांड ह्व ताल झपताल)

जागीने जोउं तो जगत दीसे नहि,
ऊंघमां अटपटा भोग भासे ;
चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे,
ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे. १
पंच महाभूत परिब्रह्मा विषे ऊपज्यां,
अणु अणु मांही रह्यां रे वळगी;
फूल ने फळ ते तो वृक्षनां जाणवां,
थड थकी डाळ ते नहि रे अळगी. २
वेद तो एम वदे, श्रुति-स्मृति साख दे-
कनक कुण्डल विषे भेद न्होये;
घाट घडिया पछी नामरूप जूजवां
अंते तो हेमनुं हेम होये. ३
जीव ने शिव तो आप इच्छाए थया
रची परपंच चौद लोक कीधा;
भणे नरसैंयो ए, ‘ते ज तुं', 'ते ज तुं’
एने समर्याथी कंई संत सीध्या. ४

११०

(राग आसा मांड ह्व ताल झपताल)

बापजी पाप में कवण कीधां हशे,
नाम लेतां तारुं निद्रा आवे;
ऊंघ आलस्य आहार में आदर्यां,
लाभ विना लव करवी भावे. ध्रु०
दिन पूठे दिन तो वही जाय छे,
दुर्मतिनां में भर्यां रे डालां ;
भक्ति भूतळ विषे नव करी ताहरी,
खांड्यां संसारनां थोथां ठालां. १
देह छे जूठडी, करम छे जूठडां,
भीड-भंजन तारुं नाम साचुं ;
फरी फरी वरणवुं , श्रीहरि तुजने
पतित-पावन तारुं नाम साचुं. २
तारी करुणा विना कृष्ण कोडामणा
कळ अने अकळनुं बळ न फावे;
नरसैंया रंकने झंखना ताहरी,
हेड बेडी भागो शरण आवे. ३

१११

(राग आसा मांड ह्व तीन ताल)

जूनुं तो थयुं रे देवळ जूनुं तो थयुं ,
मारो हंसलो नानो ने देवळ जूनुं तो थयुं. ध्रु०
आ रे काया रे हंसा, डोलवाने लागी रे,
पडी गया दांत, मांयली रेखुं तो रह्युं. मारो0
तारे ने मारे हंसा, प्रीत्युं बंधाणी रे,
ऊडी गयो हंस, पांजर पडी रे रह्युं. मारो0
बाई मीरां कहे छे प्रभु गिरिधरना गुण,
प्रेमनो प्यालो तमने पाउं ने पीउं. मारो0

११२

(राग झिंझोटी ह्न तीन ताल)

बोल मा, बोल मा, बोल मा, रे
राधा-कृष्ण विना बीजुं बोल मा. ध्रु०

साकर शेलडीनो स्वाद तजीने
कडवो लीमडो घोळ मा रे. १

चांदा सूरजनुं तेज तजीने
आगिया संगाथे प्रीत जोड मा रे. २

हीरा माणेक झवेर तजीने
कथीर संगाथे मणि तोळ मा रे. ३

मीरां कहे प्रभु गिरिधर नागर
शरीर आप्युं समतोलमां रे. ४

११३

(राग कालिंगडा ह्र ताल दीपचंदी)

नहीं रे विसारुं हरि, अंतरमांथी नहीं रे. ध्रु०

जल जमुनानां पाणी रे जातां
शिर पर मटकी धरी. १

आवतां ने जातां मारग वच्चे
अमूलख वस्तु जडी. २

आवतां ने जातां वृन्दा रे वनमां
चरण तमारे पडी. ३

पीळां पीताम्बर जरकशी जामा
केसर आड करी. ४

मोर मुगट ने काने रे कुंडल
मुख पर मोरली धरी. ५

बाई मीरां कहे प्रभु गिरिधरना गुण
विठ्ठलवरने वरी. ६

११४

(राग काफी ह्ल ताल द्रुत दीपचंदी)

मुखडानी माया लागी रे,

मोहन प्यारा ! ध्रु०

मुखडुं में जोयुं तारुं, सर्व जग थयुं खारूं,

मन मारुं रह्युं न्यारुं रे, मोहन0

संसारीनुं सुख एवुं , झांझवानां नीर जेवुं ,

तेने तुच्छ करी फरीए रे, मोहन0

मीरांबाई बलिहारी, आशा मने एक तारी,

हवे हुं तो बडभागी रे, मोहन0

११५

(राग आसावरी ह्व तीन ताल)

वैष्णव नथी थयो तुं रे, शीद गुमानमां घूमे
हरिजन नथी थयो तुं रे. टेक
हरिजन जोई हैडुं नव हरखे, द्रवे न हरिगुण गातां,
काम धाम चटकी नथी पटकी, क्रोधे लोचन रातां. १
तुज संगे कोई वैष्णव थाये, तो तुं वैष्णव साचो,
तारा संगनो रंग न लागे, तांहां लगी तुं काचो. २
परदु:ख देखी हृदे न दाझे, परनिंदा नथी डरतो,
वहाल नथी विठ्ठल शुं साचुं, हठे न हुं हुं करतो. ३
परोपकारे प्रीत न तुजने, स्वारथ छूट्यो छे नहीं,
कहेणी तेवी रहेणी न मळे, कांहां लख्युं एम कहेनी. ४
भजवानी रुचि नथी मन निश्चे, नथी हरिनो विश्वास,
जगत तणी आशा छे जांहां लगी, जगत गुरु, तुं दास, ५
मन तणो गुरु मन करशे तो, साची वस्तु जडशे,
दया दुःख के सुख मान पण, साचुं कहेवुं पडशे. ६

११६

(राग हिंडोल ह्र ताल तेवरा)

हरि, जेवो तेवो हुं दास तमारो
करुणासिंधु, ग्रहो कर मारो. टेक

सांकडाना साथी शामळिया, छो बगड्याना बेली,
शरण पड्यो खल अमित कुकरमी, तदपि न मूको ठेली. १
निज जन जूठानी जाती लज्जा, राखो छो श्रीरणछोड,
शून्य-भाग्यने सफळ करो छो, पूरो वरद बळ कोड. २
अवळनुं सवळ करो सुन्दर-वर, ज्यारे जन जाय हारी,
अयोग्य योग्य, पतित करो पावन, प्रभु दुःख-दुष्कृतहारी. ३
विनति विना रक्षक निज जनना, दोष तणा गुण मानो,
स्मरण करतां संकट टाळो, गणो न मोटो नानो. ४
विकळ पराधीन पीडा प्रजाळो, अंतरनुं दुःख जाणो,
आरत-बन्धु सहिष्णु अभयकर, अवगुण उर नव आणो. ५
सर्वेश्वर सर्वात्मा स्वतंत्र दया प्रीतम गिरिधारी,
शरणागत-वत्सल श्रीजी मारे, मोटी छे ओथ तमारी. ६

११७

(राग छाया खमाज ह्व तीन ताल)

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने;
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वळती लेवुं नाम जोने. ध्रु०
सुत वित दारा शीश समरपे, ते पामे रस पीवा जोने;
सिंधु मध्ये मोती लेवा मांही पड्या मरजीवा जोने. १
मरण आंगमें ते भरे मूठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने;
तीरे ऊभा जुए तमासो, ते कोडी नव पामे जोने. २
प्रेमपंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जोने;
मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने. ३
माथा साटे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहि सहेल जोने;
महापद पाम्या ते मरजीवा, मूकी मननो मेल जोने. ४
राम-अमलमां राता माता पूरा प्रेमी परखे जोने;
प्रीतमना स्वामीनी लीला ते रजनीदंन नरखे जोने. ५

११८

(राग खमाज ह्न ताल धुमाळी)

संतकृपाथी छूटे माया, काया निर्मळ थाय जोने;
श्वासोश्वासे स्मरण करतां, पांचे पातक जाय जोने.
केसरी केरे नादे नासे, कोटी कुंजर-जूथ जोने;
हिंमत होय तो पोते पामे, सघळी वाते सूथ जोने.
अग्निने उधेई न लागे, महामणिने मेल जोने,
अपार सिंधु महाजल ऊंडां, मरमीने मन सहेल जोने.
बाजीगरनी बाजी ते तो, जंबूरो सौ जाणे जोने;
हरिनी माया बहु बळवंती, सन्त नजरमां नाणे जोने;
सन्त सेवतां सुकृत वाधे, सहेजे नजरमां नाणे जोने;
प्रीतमना स्वामीने भजतां, आवे अखंड राज जोने.

११९

(राग सारंग ह्न ताल दीपचंदी)

जननी जीवो रे गोपीचंदनी, पुत्रने प्रेर्यो वैराग जी;
उपदेश आप्यो एणी पेरे, लाग्यो संसारीडो आग जी. ध्रु०
धन्य धन्य माता ध्रुव तणी, कह्यां कठण वचन जी;
राजसाज सुख परहरी, वेगे चालिया वन जी. १
ऊठी न शके रे ऊंटियो, बहु बोलाव्यो बाजंद जी;
तेने रे देखी त्रास ऊपन्यो, लीधी फकीरी छोड्यो फंद जी. २
भलो रे त्याग भरथरी तणो, तजी सोळसें नार जी.
मंदिर झरूखा मेली करी, आसन कीधलां बहार जी. ३
ऐ वैराग्यवन्तने जाउं वारणे, बीजा गया रे अनेक जी;
भला रे भूंडा अवनी उपरे, गणतां नावे छेक जी. ४
क्यां गयुं कुळ रावण तणुं , सगरसुत साठ हजार जी;
न रह्युं ते नाणुं राजा नंदनुं , सर्व सुपंन-वेवार जी. ५

छत्रपति चाली गया, राज मूकी राजंन जी;
देव दानव मुनि मानवी, सर्वे जाणो सुपंन जी. ६
समजी मूको तो सारुं घणुं , जरूर मुकावशे जम जी;
निष्कुळानन्द कहे नहि मटे, साचुं कहुं खाई सम जी. ७

१२०

(राग सारंग ह्न ताल दीपचंदी)

त्याग न टके रे वैराग्य विना, करीए कोटि उपाय जी;
अंतर ऊंडी इच्छा रहे, ते केम करीने तजाय जी ? ध्रु०
वेष लीधो वैरागनो, देश रही गयो दूर जी;
उपर वेष अच्छो बन्यो, मांही मोह भरपूर जी. १
काम क्रोध लोभ मोहनुं , ज्यां लगी मूळ न जाय जी;
संग प्रसंगे पांगरे, जोग भोगनो थाय जी. २
उष्ण रते अवनी विषे, बीज नव दीसो बहार जी;
धन वरसे वन पांगरे, इंद्रिय विषय आकार जी. ३
चमक देखीने लोह चळे, इंद्रिय विषय संजोग जी;
अणभेट्ये रे अभाव छे, भेट्ये भोगवशे भोग जी. ४
उपर तजे ने अन्तर भजे, एम न सरे अरथ जी;
वणस्यो रे वर्णाश्रम थकी, अंते करशे अनरथ जी. ५

भ्रष्ट थयो जोग-भोगथी, जेम बगड्युं दूध जी;
गयुं घृत मही माखण थकी, आपे थयुं रे अशुद्ध जी. ६
पळमां जोगी ने भोगी पळमां, पळमां गृही ने त्यागी जी;
निष्कुळानन्द ए नरनो, वणसमज्यो वैराग जी. ७

१२१

(राग आसा ह्न ताल झपताल)

धीर धुरन्धरा शूर साचा खरा
मरणनो भय ते तो मंन नाणे,
खर्व निखर्व दळ एक सामां फरे
तरणने तुल्य तेने ज जाणे. १
मोहनुं सेन महा विकट लडवा समे
मरे पण मोरचो नहि ज त्यागे,
कवि गुणी पंडित बुद्धे बहु आगळा
ए दळ देखतां सर्व भागे. २
काम ने क्रोध मद लोभ दळमां मुखी
लडवा तणो नव लाग लागे,
जोगिया जंगम तपी त्यागी घणा
मोरचे गये धर्मद्वार मागे. ३
एवा ए सेनशुं अडीखम आखडे
गुरुमुखी जोगिया जुक्ति जाणे,
मुक्त आनन्द मोह-फोज मार्या पछी
अखंड सुख अटळ पद राज माणे. ४

१२२

(गरबी ह्न ढाळ : सगपण हरिवरनुं साचुं)

रे शिर साटे नटवरने वरीए,

रे पाछुं ते पगलुं नव भरीए. ध्रु०

रे अंतरदृष्टि करी खोळ्युं, रे डहापण झाझुं नव डहोळ्युं;

ए हरि सारु माथुं घोळ्युं. १

रे समज्या विना नव नीसरीए, रे रण मध्ये जईने नव डरीए;

त्यां मुख पाणी राखी मरीए. २

रे प्रथम चडे शूरो थईने, रे भागे पाछो रणमां जईने;

ते शुं जीवे भूंडुं मुख लईने. ३

रे पहेलुं ज मनमां त्रेवडीए, रे होडे होडे जुद्धे नव चडीए;

रे जो चडीए तो कटका थई पडीए. ४

रे रंग सहित हरिने रटीए, रे हाक वाग्ये पाछा नव हठीए;

ब्रह्मानन्द कहे त्यां मरी मटीए. ५

१२३

(राग छाया खमाज ह्र तीन ताल)

सद्गुरु शरण विना अज्ञान-तिमर टळशे नहि रे,
जन्म मरण देनारुं बीज खरुं बळशे नहि रे. ध्रु०

प्रेमामृत-वच-पान विना, साचा खोटाना भान विना,
गांठ हृदयनी ज्ञान विना, गळशे नहि रे. १

शास्त्र पुराण सदा संभारे, तन मन इंद्रिय तत्पर वारे,
वगर विचारे वळमां सुख रळशे नहि रे. २

तत्त्व नथी मारा तारामां, सूझ समज नरता सारामां,
सेवक सूत दारामां दिन वळशे नहि रे. ३

केशव हरिनी करतां सेवा परमानन्द बतावे तेवा,
शोध विना सज्जन एवा मळशे नहि रे. ४

१२४

(राग छाया खमाज ह्व तीन ताल)

मारी नाड तमारे हाथे हरि संभाळजो रे,
मुजने पोतानो जाणीने प्रभुपद पाळजो रे. ध्रु०
पथ्यापथ्य नथी समजातुं , दुःख सदैव रहे ऊभरातुं ,
मने हशे शुं थातुं , नाथ निहाळजो रे. १
अनादि आप वैद्य छो साचा, कोई उपाय विषे नहि काचा,
दिवस रह्या छे टांचा, वेळा वाळजो रे. २
विश्वेश्वर शुं हजी विसारो, बाजी हाथ छतां कां हारो ?
महा मूंझारो मारो नटवर, टाळजो रे. ३
केशव हरि मारुं शुं थाशे, घाण वळ्यो शुं गढ घेराशे ?
लाज तमारी जाशे, भूधर भाळजो रे. ४

१२५

(राग बागेश्री ह्न ताल धमार अथवा तेवरा)

दीननाथ दयाळ नटवर ! हाथ मारो मूकशो मा;
हाथ मारो मूकशो मा, हाथ मारो मूकशो मा. ध्रु०
आ महा भवसागरे, भगवान हुं भूलो पड्यो छुं;
चौद-लोक-निवास चपला-कान्त ! आ तक चूकशो मा. १
ओथ ईश्वर आपनी, साधन विषे समजुं नहीं हुं;
प्राणपालक ! पोत जोई, शंख आखर फूंकशो मा. २
मात तात सगां सहोदर, जे कहुं ते आप मारे,
हे कृपामृतना सरोवर ! दास सारु सूकशो मा. ३
शरण केशवलालनुं छे, चरण हे हरि राम तारूं;
अखिलनायक ! आ समय, खोटे मशे पण खूटशो मा. ४

१२६

(राग काफी ह्न ताल दीपचंदी)

कोई सहाय नथी, विना हरि कोई सहाय नथी ध्रु०
बंधा मा बलमां तुं बालक, ममतामां मनथी ;
सूतो केम धरीने धीरज, धाम धरा धनथी ? १
भज भूधरने भाळ करीने, शम-दम साधनथी;
अवर तणी सेवा शा माटे, अरर ! करे अमथी ? २
काळ कराळ तणो भय भारे, जो मन मांही मथी ;
करशे ते थई शकशे केशव, आ उत्तम तनथी. ३

१२७

(राग धनाश्री ह्र तीन ताल)

रामबाण वाग्यां होय ते जाणे (२) ध्रु०

ध्रुवने वाग्यां, प्रह्लादने वाग्यां, ठरी बेठा ठेकाणे,

गर्भवासमां शुकदेवजीने वाग्यां, वेद-वचन परमाणे. १

मोरध्वज राजानां मन हरी लेवा, वहाला पधार्या ते ठामे,

काशीए जईने करवत मेलाव्यां, पुत्र-पत्नी बेउ ताणे. २

बाई मीरां उपर क्रोध करीने, राणो खडग लई ताणे,

झेरना प्याला गिरधरलाले, अमृत कर्या एवे टाणे. ३

नरसिंह महेतानी हूंडी सिकारी, खेप करी खरे टाणे,

अनेक भक्तोने एणे उगार्या, धनो भगत उर आणे. ४

१२८

(धीरा भगतनी काफी)

जेने राम राखे रे, तेने कुण मारी शके ?
अवर नहि देखुं रे, बीजो कोई प्रभु पखे. ध्रु०
चाहे अमीरने भीख मंगावे, ने रंकने करे राय,
थळने थानक जळ चलावे, जळ थानक थळ थाय;
तरणानो तो मेरु रे, मेरुनुं तरणुं करी दाखवे. १
नींभाडाथी बळतां राख्यां, मांजारीनां बाळ,
टिटोडीनां ईंडां उगार्यां, एवा छो राजन रखवाळ ;
अन्त वेळा आवो रे, प्रभु तमे तेनी तके. २
बाण ताणीने ऊभो पारधी, सींचाणो करे तकाव,
पारधीने तो पगे सर्प डसियो, सींचाणा शिर महीं घाव;बाज
पड्यो हेठो रे, पंखी ऊडी गयां सुखे. ३
गज कातरणी लईने बेठा दरजी तो दीनदयाळ,
वधे घटे तेने करे बराबर, सौनी ले संभाळ;
धणी तो धीरानो रे, हरि तो मारो हींडे हके. ४

१२९

(धीरा भगतनी काफी)

तरणा ओथे डुंगर रे, डुंगर कोई देखे नहीं;
अजाजूथ मांहे रे, समरथ गाजे सहीं, ध्रु०
सिंह अजामां करे गर्जना, कस्तूरी मृग राजंन,
तलनी ओथे जेम तेल रह्युं छे, काष्ठमां हुताशन;
दधि ओथे घृत ज रे, वस्तु एम छूपी रही. १
कोने कहुं ने कोण सांभळशे, अगम खेल अपार,
अगम केरी गम नहीं रे, वाणी न पहोंचे विस्तार;
एक देश एवो रे, बुद्धि थाकी रहे तहीं. २
मन पवननी गति न पहोंचे, छे अविनाशी अखंड,
रह्यो सचराचर भर्यो ब्रह्म पूरण, तेणे रच्यां ब्रह्मांड;
ठाम नहीं को ठालो रे, एक अणुमात्र कहीं. ३
सद्गुरुजीए कृपा करी त्यारे, आप थया रे प्रकाश,
शां शां दोडी साधन साधे, पोते पोतानी पास;
दास धीरो कहे छे रे, ज्यां जोउं त्यां तुंही तुंही. ४

१३०

(राग प्रभात ह्न ताल दीपचंदी)

हरिजन होय तेणे हेत घणुं राखवुं ,
निज नाम ग्राही निर्मान रहेवुं ,
त्रिविधना ताप ते जाप जरणा करी,
परहरी पाप रामनाम लेवूं. हरि0
सौने सरस कहेवुं, पोताने नरस थवुं ,
आप आधीन थई दान देवुं ,
मन करम वचने करी निज धर्म आदरी,
दाता भोक्ता हरि एम रहेवुं. हरि0
अडग नव डोलवुं , अधिक नव बोलवुं ,
खोलवी गूज ते पात्र खोळी ;
दीनवचन दाखवुं , गंभीर मतुं राखवुं ,
विवेकीने वात नव करवी पहोळी. हरि0
अनंत नाम उच्चारवुं , तरवुं ने तारवुं ,
राखवी भक्ति ते रांक दावे;
भक्त भोजो कहे गुरु परतापथी,
त्रिविधना ताप त्यां निकट नावे. हरि0

१३१

(राग धीरा भगतनी काफी)

गुरुजी तमें कहो छो रे, ब्रह्म तारी पासे वस्यो;
मने नव दीसे रे, क्या रसे ए रस्यो ? टेक
माथुं ब्रह्म के ब्रह्ममां माथुं, ब्रह्म आंखमां के आंख ब्रह्म,
नाकमां ए वसियो के मुखमां, ए विषे थाय मने भ्रम;
संशय निवारो रे, भ्रममांथी जाउं खस्यो. १
हाथमां के पगमां गुरु, हृदय छातीमांय,
पगमां होय तो पळुं नहि वहेलो ब्रह्म बेठो क्यांय;
वदो गुरु मोटा रे, शिष्य ज्यारे कसणी कस्यो. २
गुरुजी कहे छे, तमे शिष्य सांभळो, आमळो काढी आज,
एके अवयवे नव वहालो बिराजे, पाणी पहेली बांधु पाज;
द्दढ होये ध्याने रे, नथी ए तो जसोतस्यो. ३
जेटला ध्याने धसीने जाओ, तेटलो पासे एह,
रूपरंग विनानो तद्रूप थाशे, ज्यारे ध्यानने चडशे मेह;
बापु सहु रूपे रे, जोशो जगदीश जशो. ४

१३२

(राग खमाज ह्न ताल धुमाळी)

जीभलडी रे, तने हरिगुण गातां आवडुं आळस क्यांथी रे ?
लवरी करतां नवराई न मळे, बोली ऊठे मुखमांथी रे.
परनिंदा करवाने पूरी, शूरी खटरस खावा रे;
झघडो करवा झूझे वहेली, कायर हरिगुण गावा रे.
अंतकाल कोई काम न आवे, वहाला वेरीनी टोळी रे,
वजन धारीने सर्वस्व लेशे, रहेशो आंखो चोळी रे,
तल मंगावो ने तुलसी मंगावो, रामनाम संभळावो रे;
प्रथम तो मस्तक नहि नमतुं , पछी शुं नाम सुणावो रे ?
घर लाग्या पछी कूप खोदावे, आग ए केम होलवाशे रे ?
चोरो तो धन हरी गया, पछी दीपकथी शुं थाशे रे ?
मायाघेनमां ऊंघी रहे छे, जागीने जो तुं तपासी रे;
अंत समे रोवाने बेठी, पडी काळनी फांसी रे.
हरिगुण गातां दाम न बेसे, एके वाळ न खरशे रे;
सहेज पंथनो पार न आवे, भजन थकी भव तरशे रे.

१३३

हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जती नथी जाणी रे,
जेनी सुरता शामळिया साथ, वदे वेदवाणी रे. टेक
वहाले उगार्यो प्रह्लाद, हरणाकंस मार्यो रे;
विभीषणने आप्युं राज्य, रावण संहार्यो रे. १
वहाले नरसिंह महेताने हार हाथोहाथ आप्यो रे;
ध्रुवने आप्युं अविचळ राज, पोतानो करी स्थाप्यो रे. २
वहाले मीरां ते बाईनां झेर हळाहळ पीधां रे;
पंचाळीनां पूर्यां चीर, पांडव काम कीधां रे. ३
आवो हरि भजवानो लहावो, भजन कोई करशे रे,
कर जोडी कहे प्रेमळदास भक्तोनां दुःख हरशे रे. ४

१३४

दिलमां दीवो करो, रे दीवो करो,

कूडा काम क्रोधने परहरो, रे दिलमां दीवो करो.

दया दिवेल प्रेमपरणायुं लावो, मांही सुरतानी दिवेट बनावो;

महीं ब्रह्म-अग्निने चेतावो रे. दिलमां0

साचा दिलनो दीवो ज्यारे थाशे, त्यारे अंधारुं मटी जाशे;

पछी ब्रह्मलोक तो ओळखाशे रे. दिलमां0

दीवो अणभे प्रगटे एवो; टाळे तिमिरना जेवो ;

एने नेणे तो नीरखीने लेवो रे. दिलमां0

दास रणछोड घर संभाळ्युं , जडी कूंची ने ऊघड्युं ताळुं;

थयुं भोमंडळमां अजवाळुं रे. दिलमां0

१३५

(राग ह्व ओधवजीनो संदेशो)

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे,
क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो ?
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्षण छेदीने,
विचरीशुं कब महत्पुरुषने पंथ जो ? १
सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह ते संयमहेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि,
देह पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो. २
दर्शन-मोह व्यतीत थई ऊपज्यो बोध जो,
देह भिन्न केवळ चैतन्यनुं ज्ञान जो;
तेथी प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकीए,
वर्ते एवुं शुद्ध स्वरूपनुं ध्यान जो. ३
आत्म-स्थिरता त्रण संक्षिप्त योगनी

मुख्यपणे तो वर्ते देह पर्यंत जो;
घोर परिषह के उपसर्ग भये करी
आवी शके नहि ते स्थिरतानो अंत जो. ४
संयमना हेतुथी योग-प्रवर्तना,
स्वरूपलक्षे जिन-आज्ञा आधीन जो;
ते पण क्षण क्षण घटती जाती स्थितिमा
अंते थाये निज स्वरूपमां लीन जो. ५
पंच विषयमां रागद्वेष-विरहितता,
पंच प्रमादे न मळे मननो क्षोभ जो;
द्रव्य, क्षेत्र ने काम भाव प्रतिबंध वण
विचरवुं उदयाधीन पण वीतलोभ जो. ६
क्रोध प्रत्ये तो वर्ते क्रोध-स्वभावता,
मान प्रत्ये तो दीनपणानुं मान जो;
माया प्रत्ये माया साक्षी-भावनी,
लोभ प्रत्ये नहि लोभ समान जो. ७

बहु उपसर्ग-कर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहि,
वंदे चक्री तथापि न मळे मान जो;
देह जाय पण माया थाय न रोममां,
लोभ नहि छो प्रबळ सिद्धि निदान जो. ८
शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता,
मान अमाने वर्ते ते ज स्वभाव जो;
जीवित के मरणे नहि न्यूनाधिकता,
भव मोक्षे पण वर्ते शुद्ध स्वभाव जो. ९
मोह स्वयंभू-रमण समुद्र तरी करी,
स्थिति त्यां ज्यां क्षीण-मोह-गुण-स्थान जो,
अंत समय त्यां स्वरूप वीत-राग थई,
प्रगटावुं निज केवलज्ञान निधान जो. १०
वेदनीयादि चार कर्म वर्ते जहां,
बळी सींदरीवत् आकृतिमात्र जो;
ते देहायुष आधीन जेनी स्थिति छे,
आयुष पूर्ण मटीए दैहिक पात्र जो, ११

एक परमाणु-मात्रनी मळे न स्पर्शता,
पूर्ण कलंक-रहित अडोल स्वरूप जो;
शुद्ध निरंतर चैतन्यमूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहजपदरूप जो. १२

पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी,
ऊर्ध्व गमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो,
सादि अनंत अनंत समाधि मुखमां,
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो. १३

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमा
कही शक्या नहि पण ते श्री भगवान जो;
तेह स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं कहे ?
अनुभव-गोचर मात्र रहे ते ज्ञान जो. १४

एह परम-पद-प्राप्तिनुं कर्युं ध्यान में,
गजा वगरनो हाल मनोरथ रूप जो;
तोपण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो,
प्रभु-आज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो. १५

१३६. गरबी

(शीख सासुजी दे छे रे ह्र ए ढाळ)

मारां नयणांनी आळस रे, न नीरख्या हरिने जरी ;
एक मटकुं न मांड्युं रे, न ठरियां झांखी करी. १
शोक मोहना अग्नि रे, तपे तेमां तप्त थयां;
नथी देवनां दर्शन रे, कीधां तेमां रक्त रह्यां. २
प्रभु सघळे बिराजे रे, सृजनमां सभर भर्या;
नथी अणु पण खाली रे, चराचर मांही भळ्या. ३
नाथ गगनना जेवा रे, सदा मने छाई रहे;
नाथ वायुनी पेठे रे, सदा मुज उरमां वहे. ४
जरा ऊघडे आंखलडी रे, तो सन्मुख तेह तदा;
ब्रह्म-ब्रह्मांड अळगां रे, घडीये न थाय कदा. ५
पण पृथ्वीनां पडळो रे, शी गम तेने चेतननी ?
जीवे सो वर्ष घुवड रे, न गम तोये कंई दिननी. ६

स्वामी सागर सरिखा रे, नजरमां न माय कदी;
जीभ थाकीने विरमे रे, विराट विराट वदी. ७
पेलां दिव्य लोचनियां रे, प्रभु क्यारे ऊघडशे ?
आवां घोर अंधारां रे, प्रभु क्यारे ऊतरशे ? ८
नाथ, एटली अरजी रे, उपाडो जड पडदा;
नेन नीरखो ऊंडेरुं रे, हरिवर दरसे सदा. ९
आंख आळस छांडो रे, ठरो एक झांखी करी;
एक मटकुं तो मांडो रे, हृदय भरी नीरखो हरि. १०

१३७*

(राग मांड ह्व ताल दादरा)

प्रेमळ ज्योति तारो दाखवी
मुज जीवन-पन्थ उजाळ. ध्रु०

दूर पड्यो निज धामथी हुं ते घेरे घन अंधार,
मार्ग सूझे नव घोर रजनीमां, निज शिशुने संभाळ.
मारो जीवन-पंथ उजाळ. १

डगमगतो पग राख तुं स्थिर मुज, दूर नजर छो न जाय,
दूर मार्ग जोवा लोभ लगीर न, एक डगलुं बस थाय,
मारे एक डगलुं बस थाय. २

आज लगी रह्यो गर्वमां हुं ने मागी मदद न लगार,
आप-बळे मार्ग जोईने चालवा हाम धरी मूढ बाळ,
हवे मागुं तुज आधार. ३

भभकभर्या तेजथी हुं लोभायो, ने भय छतां धर्यो गर्व,
वीत्यां वर्षोनो लोप स्मरणथी स्खलन थयां जे सर्व,
मारे आज थकी नवुं पर्व. ४

तारा प्रभावे निभाव्यो मने प्रभु आज लगी प्रेमभेर,
निश्चे मने ते स्थिर पगलेथी चलवी पहोंचाडशे घेर,
दाखवी प्रेमळ ज्योतिनी सेर. ५

कर्दमभूमि कळणभरेली, ने गिरिवर केरी कराड,
धसमसता जळ केरा प्रवाहो, सर्व वटावी कृपाळ,
मने पहोंचाडशे निज द्वार. ६

रजनी जशे ने प्रभात ऊजळशे, ने स्मित करशे प्रेमाळ,
दिव्यगणोनां वदन मनोहर मारे हृदय वस्यां चिरकाळ,
जे में खोयां हतां क्षण वार. ७

---

* Lead Kindly Light का भावानुवाद ।

१३८

(राग भैरवी ह्व तीन ताल)

मंगल मंदिर खोलो

दयामय ! मंगल मंदिर खोलो. ध्रु०

जीवन-वन अति वेगे वटाव्युं ,

द्वार ऊभो शिशु भोळो,

तिमिर गयुं ने ज्योति प्रकाश्यो,

शिशुने उरमां लो लो. १

नाम मधुर तम रट्यो निरंतर,

शिशु सह प्रेमे बोलो,

दिव्य-तृषातुर आव्यो बालक,

प्रेम अमीरस ढोळो. २

१३९

(राग भैरवी ह्व ताल दीपचंदी)

एक ज दे चिनगारी, महानल !
एक ज दे चिनगारी. ध्रु०
चकमक लोढुं घसतां घसतां
खरची जिंदगी सारी;
जामगरीमां तणखो न पड्यो
न फळी महेनत मारी. १
चाँदो सळग्यो, सूरज सळग्यो,
सळगी आभ अटारी;
ना सळगी एक सगडी मारी
वात विपतनी भारी. २
ठंडीमां मुज काया थथरे,
खूटी धीरज मारी;
विश्वानल ! हुं अधिक न मागुं ,
मागुं एक चिनगारी. ३

१४०

(राग भैरवी या आसावरी ह्र ताल दीपचंदी)

एक ज ए अभिलाष

मम हृदये तव वास. एक ज0

ना चाहुं जग कीर्ति मेवा, ना वैकुण्ठे वास

सिद्धि मळो, जीवन बलि हो वा, ए अन्तरनी आश0

एक ज0

सफल विफलनी ना मुज परवा हरि-जन-सेवा,

महा आंधीमां रहो निरन्तर तुज चरणे विश्वास0

एक ज0

१४१*

जीवन जब सुकाई जाय
करुणा वर्षन्ता आवो !
माधुरी मात्र छुपाई जाय
गीत सुधा झरन्ता आवो !
कर्मनां ज्यारे काळां वादळ
गरजी गगडी ढांके सहु स्थळ
हृदय-आंगणे, हे नीरव-नाथ
प्रशान्त पगले आवो !
मोटुं मन ज्यारे नानुं थई
खूणे भराये ताळुं दई,
ताळुं तोडी, हे उदार नाथ !
वाजन्ता गाजन्ता आवो !
काम क्रोधनां आकरां तूफान
आंधळा करी भुलावे भान,
हे सदा जागन्त ! पाप धुवन्त !
वीजळी चमकन्ता आवो !

* इसका मूल बंगाली के लिए नं. १७३ देखें ।

मराठी भजन

१४२

(राग जोगी मांड ह्न ताल कवाली)

जे का रंजले गांजले, त्यासि म्हणे जो आपुले ।
तोचि साधु ओळखावा, देव तेथेंचि जाणावा ॥
मृदु सबाह्य नवनीत, तैसें सज्जनाचें चित्त ।
ज्यासि आपंगिता नाहीं, त्यासि धरी जो हृदयीं ॥
दया करणें जे पुत्रासी, तेचि दासी आणि दासी ।
तुका म्हणे सांगों किती, तोचि भगवंताची मूर्ति ॥

१४३

(राग केदार ह्न ताल केरवा या धुमाळी)

पापाची वासना नको दावूं डोळां,

त्याहुनी आंधळा बराच मी ।

निंदेचें श्रवण नको'माझे कानीं,

बधिर करोनि ठेवीं देवा ।

अपवित्र वाणी नको माइया मुखा,

त्याजहुनि मुका बराच मी ।

नको मज कधीं परस्त्रीसंगति,

जनांतूनि माती उठतां भली ।

तुका म्हणे मज अवध्याचा कंटाळा,

तू एक गोपाळा आवडसी ॥

१४४

जेथें जातों तेथें तूं माझा सांगाती
चालविसी हातीं धरूनिया ।
चालों वाटे आम्ही तुझाचिं आधार
चालविसी भार सर्वे माझा ।
बोलों जातां वरळ करिसी तें नीट
नेली लाज धीट केलें देवा ।
अवधे जन मज झाले लोकपाळ
सोइरे सकळं प्राणसखे ।
तुका म्हणे आतां खेळतों कौतुकें
झालें तुझें सुख अंतर्बाहीं ॥

१४५

(राग भैरवी ह्न ताल कवाली)

न कळतां काय करावा उपाय
जेणें राहे भाव तुझ्या पायी ?
येउनिया वास करिसी हृदयीं
ऐसें घडे कंई कासयानें ?
साच भावें तुझे चिंतन मानसीं
राहे हें करिसी कैं गा देवा ?
लटिकें हें माझें करूनिया दूरी
साच तूं अंतरी येउनी राहे ।
तुका म्हणे मज राखावें पतिता
आपुलिया सत्ता पांडुरंगा ॥

१४६

मुक्तिपांग नाहीं विष्णूचिया दासां
संसार तो कैसा न देखती ।
बैसला गोविंद जडोनिया चित्तीं
आदि तेंचि अंतीं अवसानीं ।
भोग नारायणा देऊनी निराळीं
ओवियां मंगळी तोचि गाती ।
बळ बुद्धि त्यांची उपकारासाठीं
अमृत तें पोटीं सांठविलें ।
दयावंत तरी देवाच सारिखीं
आपुलीं पारकीं नोळखती ।
तुका म्हणे त्यांचा जीव तोचि देव
वैकुंठ तो ठाव वसती ते ॥

१४७

काय वाणूं आतां न पुरे हे वाणी
मस्तक चरणीं ठेवीतसें ।
थोरीव सांडिली आपुली परिसें
नेणे शिवों कैसें लोखंडासी ।
जगाच्या कल्याणा संतांच्या विभूति
देह कष्टवती उपकारें ।
भूतांची दया हें भांडवल संतां
आपुली ममता नाहीं देहीं ।
तुका म्हणे सुख पराचिया सुखें
अमृत हें मुखें स्रवतसे ॥

१४८

नाहीं संतपण मिळत हें हाटीं ।
हिंडतां कपाटीं रानीं वनीं ।
न ये मोल देतां धनाचिया राशी ।
नाहीं तें आकाशीं पाताळीं तें ।
तुका म्हणे मिळे जिवाचिये साटीं ।
नाहीं तरी गोष्टी बोलों नये ॥

१४९

भक्त ऐसे जाणा जे देहीं उदास
गेले आशापाश निवारूनी ।
विषय तो त्यांचा झाला नारायण
नावडे धन जन मातापिता ।
निर्वाणीं गोविंद असे मागेंपुढें
कांहीच सांकडें पडों नेदी ।
तुका म्हणे सत्य कर्मा व्हावें साह्य
घातलिया भय नर्का जाणें ॥

१५०

वेद अनंत बोलिला, अर्थ इतुकाचि साधिला ।
विठोबासी शरण जावें, निजनिष्ठा नाम गावें ।
सकळ शास्त्रांचा विचार, अंती इतुकाचि निर्धार ।
अठरा पुराणीं सिद्धांत, तुका म्हणे हाचि हेत ॥

१५१

आणीक दुसरें मज नाहीं आतां
नेमिलें या चित्तापासुनियां ।
पांडुरंग ध्यानीं, पांडुरंग मनीं,
जागृतीं स्वप्नीं पांडुरंग ।
पडिलें वळण इंद्रियां सकळां
भाव तो निराळा नाहीं दुजा ।
तुका महणे नेत्रीं केली ओळखण
तटस्थ तें ध्यान विटेवरी ॥

१५२

न मिळो खावया, न वाढो संतान,

परि हा नारायण कृपा करो ।

ऐसी माझी वाचा मज उपदेशी

आणीक लाकांसी हेंचि सांगे ।

विटंबो शरीर, होत कां विपत्ती

परि राहो चित्तीं नारायण ।

तुका म्हणे नाशिवंत हें सकळ

आठवे गोपाळ तेंचि हित ॥

१५३

महारासी शिवे, कोपे ब्राह्मण तो नव्हे ।

तया प्रायश्चित्त कांहीं, देहत्याग करितां नाहीं ॥।

नातळे चांडाळ, त्याचा अंतरीं विटाळ ।

ज्याचा संग चित्तीं, तुका म्हणे तो त्या याती ॥

१५४

पुण्य पर-उपकार, पाप ते पर पीडा,
आणीक नाहीं जोडा दुजा यासी ।
सत्य तोचि धर्म, असत्य तें कर्म,
आणीक हें वर्म नाहीं दुजें ।
गति तेचि मुखीं नामाचें स्मरण,
अधोगति जाण विन्मुखता ।
सांतांचा संग तोचि स्वर्गवास,
नर्क तो उदास अनर्गळ ।
तुका म्हणे उघडें आहे हित घात,
जया जें उचित करा तैसें ॥

१५५

(राग भैरवी ह्न ताल कवाली)

शेवटींची विनवणी । संतजनीं परिसावी ॥
विसर तो न पडावा। माझा देवा तुम्हांसी ॥
पुढें फार बोलो काई। अवधें पायां विदित ॥
तुका म्हणे पडिलों पायां। करा छाया कृपेची ॥

१५६

हेंची दान दे गा देवा । तुझा विसर न व्हावा |
गुण गाईन आवडी । हेचि माझी सर्व जोडी ।
न लगे मुक्ति धनसंपदा, संत-संग देई सदा ।
तुका म्हणे गर्भवासीं, सुखें घालावें आम्हासीं ॥

१५७

(राग धनाश्री ह्न तीन ताल)

संत-पदाची जोड, दे रे हरि ! संत-पदाची0 ध्रु० ॥
संत समागमें आत्म-सुखाचा सुन्दर उगवे मोड ।
सुफलित करुनी पूर्ण मनोरथ, पुरविसि जिविंचे कोड ।
अमृत म्हणे रे हरि भक्तांचा शेवट करिसी गोड ॥

१५८

(राग खमाज ह्न तीन ताल)

स्मरतां नित्य हरि, मग ती माया काय करी ?
श्रवणें मननें अद्वय-वचनें, पळतो काळ दुरी ।
करुणाकर वर-दायक हरि जो ठेवित हात शिरीं ।
तोचि निरंतर उद्धव-चरणीं, अमृत पान करी ॥

१५९

(राग खमाज ह्व तीन ताल)

अशाश्वत संग्रह कोण करी ?

कोण करी घर सोपे माड्या,

झोंपडि हेचि बरी ।

चिरगुट चिंध्या जोडुनि कंथा

गोधडी हेचि बरी ।

नित्य नवें जें देइल माधव

भक्षूं तेंचि धरीं ।

अमृत म्हणे मज भिक्षा डोहळे

येति अशा लहरी ॥

१६०

(राग झिंझोटी ह्न ताल दादरा)

हरि-भजनावीण काळ घालवूं नको रे ॥
दोरिच्या सापा भिउनी भवा, भेटि नाहिं जिवा शिवा ।
अंतरींचा ज्ञान-दिवा, मालवूं नको रे ॥
विवेकाची ठरेल ओल. ऐसे बोलावे कीं बोल ।
आपुलें मतें उगिच चिखल, कालवूं नको रे ॥
संत-संगतीनें उमज, आणुनि मनीं पुरतें समज ।
अनुभवावीण मान हालवूं नको रे ॥
सोहिरा म्हणे ज्ञान-ज्योति, तेथें कैंचि दिवस राती |
तयाविणें नेत्रपाती, हालवूं नको रे ॥

१६१

(राग बडहंस ह्न ताल धुमाळी)

देह जावो अथवा राहो

पांडुरंगीं दृढ़ भावो ।

चरण न सोडीं सर्वथा

आण तुझी पंढरिनाथा ।

वदनीं तुझें मंगल नाम

हृदयीं अखंडित प्रेम ।

नामा म्हणे केशवराजा

केला पण चालवि माझा ॥

१६२

सन्ताचें लक्षण ओळखाया खूण
दिसती उदासीन देहभावा ।
सतत अन्तरीं प्रेमाचा जिव्हाळा
वाचे वसे चाळा रामकृष्ण |
तुझ्या ध्यानीं ज्यांचें सदा भरलें मन
विश्व तूंचि म्हणुनि भजती भावें ।
ऐसे नित्यानन्दें बोधें जे निवाले
ते जिवा वेगळे न करी नाम्या ॥

१६३

सोडीं संसाराची आस । धरीं भक्तीचा हव्यास ॥
दुःख-मूल हा संसार । तयामध्यें मक्ती सार ॥
ग्रन्थ पाहतां लक्षकोटि । जेथें जेथें भक्ती मोठी ॥
जन्मा आलियाचें फळ । दास म्हणे तें केवए ॥

१६४

(राग पूर्वी अगर विभास ह्व ताल कवाली)

देव जवळी अंतरीं, भेटी नाहीं जन्म वेरी ।
मूर्ति त्रैलोक्यीं संचली, द्दष्टि विश्वाची चुकली ।
भाग्यें आले संतजन, झालें, देवाचें दर्शन ।
रामदासीं योग झाला, देहीं देव प्रगटला ॥

१६५

(राग पूर्वी ह्व तीन ताल)

तें मन निष्ठुर कां केलें, जें पूर्ण दयेनें भरलें ।

गजेन्द्राचे हाकेसरिसें, घाउनियां आलें ।

प्रह्लादाच्या भावार्थासी, स्तंभीं गुरगुरलें ॥

पांचाळीच्या करुणा-वचनें कळवळुनी आलें ।

एका जनार्दनीं पूर्ण कृपेनें निशिदिनिं पदीं रमलें ।।

१६६

(राग झिंझोटी ह्न ताल धुमाळी)

भाव धरा रे, अपुलासा देव करा रे ॥

कोणी काय म्हणों यासाठीं, बळकट प्रेम असावें गांठी ।

निंदा-स्तुतिवर लावुनि काटी, मी-तूं हरा रे-अपुलासा0

सकाम साधन सर्वहि सांडा, निष्कामें मुळ भजनी भांडा ।

नाना कुतर्क वृत्तिसि दवडा, आलि जरा रे-अपुलासा0

दुर्लभ नरदेहाची प्राप्ति, पून्हां न मिळे हा कल्पांतीं ।

ऐसा विवेक आणुनि चितीं, गुरुसि वरा रे-अपुलासा0

कसरिनाथ गुरुचे पायीं, सृष्टिं आजि बुडाली पाहीं ।

शिवदिनिं निश्चय दुसरा नाहीं, भक्त सखा रे-अपुलासा0

१६७

(राग छाया खमाज ह्न ताल धुमाळी)

नियम पाळावे, जरि म्हणशिल योगी व्हावें ॥ ध्रु० ॥

रसनेचा जो अंकित झाला, समूळ निद्रेला जो विकला,
तो नर योगाभ्यासा मुकला, असें समजावें - जरि0

रात्रीं निद्रा परिमित घ्यावी, भोजनांत ही मिती असावी,
शब्द-वल्गना बहु न करावी, साधक जीवें - जरि0

यापरि सकलाहार-विहारीं, नियमित व्हावें मनिं अवधारीं,
निज-रूपोन्मुख होउनि अंतरीं, चित्त मग धावें - जरि0

विषयापासुनि वळतां वृत्ति, येइल सहजचि आत्म्यावरती,
जैसा निश्चळ दीप निवातीं, समाधि पावे - जरि0

बुद्धि-ग्राह्य अतीन्द्रिय सुख तें, वर्णाया श्रुति अक्षम त्यातें,
मग तें कैसें कृष्णसुतातें बोलतां यावें - जरि0

बंगाली भजन

१६८

(राग भैरवी ह्न ताल ह्न दादरा या राग आसावरी ह्न द्रुत एक ताल)

अन्तर मम विकसित करो अन्तरतर हे !

निर्मल करो उज्जवल करो, सुन्दर करो हे ह्न अन्तर0

जाग्रत करो, उद्यत करो, निर्भय करो हे,

मंगल करो, निरलस निःसंशय करो हे ह्न अन्तर0

युक्त करो हे सबार संगे, मुक्त करो हे बंध,

संचार करो सकल कर्मे शान्त तोमार छंद ह्न अन्तर0

चरण-पद्मे मम चित्त निष्पंदित करो हे,

नंदित करो, नंदित करो, नंदित करो हे ह्न अन्तर0

१६९

वहे निरन्तर अनंत आनन्दधारा

बाजे असीम नभ माझे अनादि रव

जागे अगण्य रवि-चन्द्र-तारा ह्न वहे0

एक अखण्ड ब्रह्माण्ड राज्ये

परम एक सेइ राज-राजेन्द्र राजे

विस्मित निमेष-हत विश्व-चरणे विनत

लक्ष शत भक्त-चित्त वाक्यहारा. ह्न वहे0

१७०

(राग अडाणा ह्न ताल झपताल)

तुमि बंधु , तुमि नाथ,

निशिदिन तुमि आमार;

तुमि सुख तुमि शान्ति,

तुमि हे अमृत पाथार, ॥ ध्रु० ॥

तुमिइ तो आनन्दलोक,

जुडाओ प्राण, नाशो शोक;

तापहरण तोमार चरण,

असीम शरण दीनजनार. ॥तुमि0॥

१७१

एकटि नमस्कारे प्रभु ! एकटि नमस्कारे
सकल देह लुटिये पड़ूक् तोमार ए संसारे ।
घन श्रावण मेघेर मत रसेर भारे नम्र नत
एकटि नमस्कारे प्रभु ! एकटि नमस्कारे
समस्त मन पडिया थाक् नव भवन-द्वारे ।
नाना सुरेर आकुल धारा मिलिये दिये आत्म-हारा
एकटि नमस्कारे प्रभु ! एकटि नमस्कारे
समस्त गान समाप्त होक् नीरव पारावारे ।
हंस जेमन मानस-यात्री, तेमनि सारा दिवस-रात्री
एकटि नमस्कारे प्रभु ! एकटि नमस्कारे
समस्त प्राण उडे चलुक् महा-मरण पारे ॥

१७२

आनन्द लोके, मंगला लोके, विराजो ! सत्य सुन्दर !

महिमा तव उद्भासित महा गगन माझे

विश्वजगत मणिभूषण वेष्टित चरणे ॥ आनन्द0 ॥।

ग्रहतारक चन्द्रतपन व्याकुल द्रुत वेगे

करिछे पान, करिछे स्नान अक्षय किरणे ॥ आनन्द0 ॥

धरणी पर झरे निर्झर मोहन मधु शोभा,

फुल पल्लव गीत गन्ध सुन्दर वरणे ॥ आनन्द0 ॥

बहे जीवन रजनी दिन चिर नूतन धारो,

करुणा तव अविश्राम जनमे मरणे ॥ आनन्द0 ॥

स्नेह प्रेम दया भक्ति कोमल करे प्राण,

कत सान्त्वन करो वर्षण सन्तापहरण ॥ आनन्द0 ॥

जगते तव की महोत्सव वन्दन करे विश्वे,

श्रीसम्पद भूमाष्पद निर्भय शरणे ॥ आनन्द0 ॥

१७३*

जीवन जखन शुकाये जाय,
करुणा धाराय एसो ।
सकल माधुरी लुकाये जाय,
गीत-सुधा-रसे एसो ॥
कर्म जखन प्रबल आकार,
गरजि उठिया ढाके चारि धार,
हृदय-प्रान्ते, हे नीरवनाथ !
शान्त चरणे एसो ॥ १ ॥
आपनारे जबे करिया कृपण,
कोणे पड़े थाके दीन हीन मन
दुवार खुलिया, हे उदार नाथ !
राज-समारोहे एसो ॥ २ ॥
वासना जखन विपुल धूलाय,
अन्ध करिया अबोधे भुलाय,
ओहे पवित्र ! ओहे अनिद्र !
रुद्र आलोके एसो ॥ ३ ॥

---

* इसका गुजराती भाषान्तर के लिए नं. १४१ पर देखें.

१७४

तोर आपन जने छडबे तोरे,
ता बोले भावना करा चलबे ना |
ओ तोर आशालता पडबे छिंडे,
हयतो रे फल फलबे ना ॥ ता बले0 ।।
आसबे पथे आंधार नेमे,
ताइ बलेइ कि तु रइबि थेमे ।
ओ तुइ बारे बारे ज्वालबि बाति,
हयतो बाति ज्वलबे ना ॥ ता बले0 |।
शुने तोमार मूखेर वाणी,
आसबे घिरे वनेर प्राणी ।
हयतो तोमार आपन घरे,
पाषाण हिया गलबे ना ॥ ता बले0 ।।
बद्ध दुआर देखबि बले,
अमनि कि तुइ आसबि चले ।
तोरे बारे बारे ठेलते हवे,
हयतो दुआर टलबे ना ॥ ता बले0 ॥।

१७५

(राग जिल्हा ह्र तीन ताल)

तोमारि नाम बलब, (आमि बलब) नाना छले ॥ ध्रु० ॥

बलब एका बसे आपन मनेर छायातले ॥ तोमारि0॥

बलब बिना भाषाय, बलब बिना आशाय ।

बलब मुखेर हासि दिये, बलब चोखेर जले ।। तोमारि0 ।।

बिना प्रयोजनेर डाके डाकब तोमार नाम ।

सेइ डाके मोर शुधु शुधुइ पूरबे मनष्काम ॥। तोमारि0 ॥

शिशु जेमन माके नामेर नेशाय डाके ।

बलते पारे एइ सुखेतेइ मायेर नाम से बले ॥ तोमारि0॥

१७६

(राग नट ह्व ताल धुमाली)

मोर संध्याय तुमि सुन्दर वेशे एसेछ
तोमाय करि गो नमस्कार ।
मोर अंधकारेर अन्तरे तुमि हेसेछ
तोमाय करि गो नमस्कार ॥ मोर० ॥
एइ नम्र-नीरव सौम्य-गंभीर आकाशे
तोमाय करि गो नमस्कार ।
एइ शान्त-सुधिर तंद्रा-निबिड बाताशे
तोमाय करि गो नमस्कार ॥ मोर० ॥
एइ क्लान्त धरार श्यामलांचल-आसने
तोमाय करि गो नमस्कार ।
एइ स्तब्ध तारार मौन-मंत्र-भाषणे
तोमाय करि गो नमस्कार ॥ मोर० ॥
एइ कर्म अन्ते निभृत पान्थ-शालाते
तोमाय करि गो नमस्कार ।
एइ गन्ध - गहन - संध्या - कुसुम - मालाते
तोमाय करि गो नमस्कार ॥ मोर० ||

१७७

सत्य मंगल प्रेममय तुमि
        ध्रुव-ज्योति तुमि अंधकारे ॥
तुमि सदा जार हृदे बिराजो
दुःख ज्वाला सेइ पासरे ह्न
        सब दुःख ज्वाला सइ पासरे ॥
तोमार ज्ञाने तोमार ध्याने
        तव नामे कत माधुरी ।
जेइ भक्त सेइ जाने
        तुमि जानाओ जारे सेइ जाने ।
        ओहे तुमि जानाओ जारे सेइ जाने ॥

सिन्धी भजन

१७८

तेरा मकान आला, जित्थे कित्थे वसी भी तूं॥
हलो तो आसमान वेखूं, आगा हली पसूं।
आसमान मिड्योहि तारा, तारन जो चंड भी तूं॥
हलो तो बाजार वेखूं, आगा हली पसूं।
बाजार मिड्योहि आदम, आदम जो दम भी तूं॥
हलो तो मन्दिर वेखूं, आगा हली पसूं।
मन्दिर मिड्योहि मूरत, मूरत जो सूरत भी तूं॥
हलो तो दरिया वेखूं, आगा हली पसूं।
दरिया मिड्योहि लहरूँ, लहरन जो लाल भी तूं॥
हलो तो किश्ती वेखूं, आगा हली पसूं।
किश्ती में रहे थो राहिब, राहिब जो साहिब भी तूं॥

अंग्रेजी भजन

१७९

Take my life, and let it be
consecrated, Lord ! to Thee;
Take my hands, and let them move
At the impulse of Thy love.
Take my moments and my days,
Let them flow in ceaseless praise.
Take my feet, and let them be
Swift and beautiful for Thee.
Take my voice, and let me sing
Always, only for my King;
Take my lips, and let them be
Filled with messages from Thee.

Take my silver and my gold;

Not a mite would I withhold.

Take my intellect, and use

Every power as Thou shalt choose.

Take my will, and make it Thine;

It shall be no longer mine.

Take my heart; it is Thine own;

It shall be Thy Royal Throne.

Take my love; My Lord, I pour

At Thy feet its treasure-store.

Take myself, and I will be

Ever, only, all for Thee.

१८०

Lead, kindly Light, amid the encircling gloom
Lead Thou me on:
The night is dark and I am far from home.
Lead Thou me on.
Keep Thou my feet, I do not ask to see
The distant scene; one step enough for me.
I was not ever thus, nor prayed that Thou
Shouldst lead me on;
I loved to choose and see my path; but now
Lead Thou me on.
I loved the garish day, and spite of fears.
Pride ruled my will: remember not past years.
So long Thy power hath blest me, sure it still
Will lead me on,
O'er moor and fen, o'er crag and torrent, till.
The night is gone;
And with the morn, those angel faces smile,
Which I have loved long since and lost awhile.

१८१

When the mists have rolled in splendour
From the beauty of the hills,
And the sunlight falls in gladness
On the river and the rills,
We recall our Father's promise
In the rainbow of the spray;
We shall know each other better
Whn the mists have rolled away.

CHORUS

We shall know as we are known;
Never more to walk alone,
In the dawning of the morning
Of that bright and happy day;
We shall know each other better
when the mists have rolled away.

Oft we tread the path before us
With a weary burdened heart;
Oft we toil amid the shadows
And our fields are far apart;
But the Saviour's "Come, ye blessed",
All our labour will repay,
When we gather in the morning

Where the mists have rolled away.

We shall come with joy and gladness,

We shall gater round the Throne;

Face to face with those that love us,

We shall know as we are known.

And te song of our redemption

Shell resound through endless day,

When the shadows have departed

And the mists have rolled away.

१८२

Nearer, my God, to Thee, nearer to Thee !
E’en though it be a cross that raiseth me,
Still all my song shall be —
Nearer, my God, to Thee, nearer to Thee.
Though like the wanderer (the sun gone down,)
Darkness be over me - my rest a stone;
Yet in my dreams I'd be
Nearer, my God, to Thee, nearer to Thee.
Then let the Way appear steps upto heaven,
All that Thou sendest me in mercy Given;
Angels to beckon me
Nearer, my God, to Thee, nearer to thee
Then with my waking thoughts bright with
Thy praise,
Out of my stony griefs **Beth-el** I'll raise;
So by my woes to be
Nearer, my God, to Thee, nearer to Thee.
Or if on joyful wing cleaving the sky,
Sun, moon, and stars forgot, upwards I fly,
Still all my song shall be,
Nearer, my God, to Thee, nearer to Thee.

१८३

Rock of ages, cleft for me,

Let me hide myself in Thee;

Let the Water and the Blood

From Thy riven Side which flowed,

Be of sin the double cure,

Cleanse me from its guilt and power.

Not the labour of my hands

Can fulfil Thy law's demands;

Could my zeal no respite know,

Could my tears for ever flow,

All for sin could not atone,

Thou must save, and thou alone.

Nothing in my hand I bring,

Simply to Thy Cross I cling;

Naked, come to Thee for dress,

Helpless, look to Thee for grace;

Foul, I to the Fountain fly;

Wash me, Saviour, or I die.

While I draw this fleeting breath,

When my eyelids close in death,

When I soar through tracts unknown,

See Thee on Thy Judgement Throne;

Rock of ages, cleft for me,

Let me hide myself in Thee.

१८४

When I survey the wondrous Cross
On which the Prince of Glory died,
My richest gain I count but loss,
And pour contempt on all my pride

Forbid it, Lord, that I should boast
Save in the Cross of Christ, my God;
All the vain things that charm me most,
I sacrifice them to His Blood.

See from His Head, His Hands, His Feet,
Sorrow and love flow mingling down;
Did e'er such love and sorrow meet,
Or thorns compose so rich a crown ?

Were the whole realm of nature mine,
That were an offering far too small;
Love so amazing, so divine,
Demands my soul, my life, my all.

To Christ, Who won for sinners grace
By bitter grief and anguish sore,
Be praise from all the ransomed race,
For ever and for evermore.

राष्ट्रगीत

१८५

(राग काफी ह्व ताल दीपचंदी)

वन्दे मातरम् ॥

सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां शस्य-श्यामलां मातरम् ।

शुभ्र - ज्योत्स्ना - पुलकित - यामिनीं -

फुल्ल कुसुमित-द्रुम-दल शोभिनीम् ।

सुहासिनीं सुमधुर-भाषिणीं सुखदां वरदां मातरम् - वन्दे0 ।

१८६

(राग कोरस ह्र ताल धुमाली)

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।

पंजाब सिंधु गुजरात मराठा, द्राविड उत्कल बंग ।

विक्ध्य हिमाचल यमूना गंगा, उच्छल-जलधितरंग ।

तव शुभ नामे जागे, तव शुम आशिष मागे ।

गाहे तव यश-गाथा ।

जनगण-मंगलदायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।

जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

अहरह तव आह्वान प्रचारित, शुनि तव उदार वाणी ।

हिन्दु बौद्ध शीख जैन पारसिक, मुसलमान ख़िस्टानी ।

पूरब पश्चिम आसे, तब सिंहासन पाशे ।

प्रेमहार हय गाथा ।

जनगण-एवयविधायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।

जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

पतन-अभ्युदय-बंधुर पंथा युग-युग-धावित यात्री ।

हे चिरसारथि ! तव रथचक्रे मखरित पथ दिनरात्री ।

दारुण विप्लव माझे, तव शंखध्वनि बाजे ।

संकट-दुःख-त्राता ।

जनगण-पथपरियायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।

जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

घोर तिमिरघन निबिड निशीथे पीडित मूर्छित देशे ।

जाग्रत छिल तव अविचल मंगल नतनयने अनिमेषे ।

दुःस्वप्ने आतंके, रक्षा करिले अंके ।

स्नेहमयी तुमि माता ।

जनगण-दुःखत्रायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ।

जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

रात्रि प्रभातिल, उदिल रविच्छबि पूर्व-उदय-गिरि-भाले ।

गाहे विहंगम, पुण्य समीरण नव-जीवन-रस ढाले ।

तव करुणारुण रागे, निद्रित भारत जागे ।

तव चरणे नत माथा ।

जय जय जय हे जय राजेश्वर, भारत-भाग्यविधाता ।

जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

१८७

(राग भूपाली ह्व तीन ताल)

अयि भुवन-मनो-मोहिनी !
निर्मल सूर्य-करोज्ज्वल धरणी !
जनक-जननी-जननी !
नील-सिंधु-जल-धौत-चरणतल,
अनिल-विकम्पित-श्यामल-अंचल,
अम्बर-चुम्बित-भाल-हिमाचल,
शुभ्र-तुषार-किरीटिनी ! ॥ ध्रु० ॥
प्रथम प्रभात उदय तव गगने,
प्रथम साम-रव तव तपोवने,
प्रथम प्रचारित तव वन भवने,
ज्ञान धर्म कत काव्यकाहिनी ! ॥ १ ॥
चिरकल्याणमयी तुमि धन्य,
देशविदेशे वितरिछ अन्न,
जाह्नवी-जमुना-विगलित-करुणा-
पुण्य-पीयूष-स्तन्य-वाहिनी ! ॥ २ ॥

१८८

(राग मिश्र पीलु ह्न ताल धुमाली)

सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं उसकी, वह बोस्ताँ हमारा ॥ ध्रु० ॥
गुरबतमें हों अगर हम, रहता है दिल वतनमें ।
समझो वहीं हमें भी, दिल हो जहाँ हमारा ॥ १ ॥
परबत वह सबसे ऊँचा, हमसाया आसमाँका ।
वह संतरी हमारा, वह पासबाँ हमारा ॥ २ ॥
गोदीमें खेलती हैं, जिसकी हज़ारों नदियाँ ।
गुलशन है जिनके दमसे, रश्के-जिनाँ हमारा ॥ ३ ॥
ए आबे-रूदे-गंगा, वह दिन है याद तुझको ।
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा ॥ ४ ॥
मज़हब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना ।
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा ॥ ५ ॥

यूनानो मिस्रो रूमा, सब मिट गये जहाँसे ।
अब तक मगर है बाक़ी, नामोनिशाँ हमारा ॥ ६ ॥
कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी ।
सदियों रहा है दुश्मन, दौरे-जहाँ हमारा ॥ ७ ॥
इकबाल कोई महरम, अपना नहीं जहाँमें ।
मालूम क्या किसीको, दर्दे-निहाँ हमारा ॥ ८ ॥

भजनकी धुन

नारायण नारायण जय गोविन्द हरे ।

नारायण नारायण जय गोपाल हरे ॥

*　　*　　*

रघुपति राघव राजा राम, पतीतपावन सीताराम ।

ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥

*　　*　　*

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

*　　*　　*

सिय-स्वामिन्‌की जय, प्यारे राघवकी जय।

बोलो हनुमान्‌-कृपालुकी जय जय जय ॥

*　　*　　*

रामधुन लागी गोपालधुन लागी ।

*　　*　　*

जय गोविन्द हरि गोविन्द

जय गोविन्द राधे गोविन्द

जय गोपाल राधे गोविन्द ।

भज ले, भज ले सीताराम

मंगलभूरति, सुन्दर श्याम |

*   *   *

भज मन प्यारे सीताराम ।

*   *   *

राधाकृष्ण जय कुंजविहारी, मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥

*   *   *

पावना रामा, पतीतपावना रामा ।

*   *   *

राजा राम राम राम, सीता राम राम राम ॥

*   *   *

जय राम, जय राम, जय जय राम ।

श्री राम, जय राम, जय जय राम ॥

*   *   *

हरे राम, हरे राम, हरे राम, हरे ।

भज मन निशिदिनी प्यारे ||

*   *   *

भजावा राम मेघश्याम, मनीं आठवा हो सीताराम ।

मनीं आठवा हो सीताराम, मनीं आठवा हो राजाराम ||

*   *   *

निवृत्ति ज्ञानदेव सोपान मुक्ताबाई ।

एकनाथ नामदेव तुकाराम । तुकाराम । तुकाराम ॥

*   *   *

गोपाल राधेकृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल ॥

*   *   *

साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव

साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिवा ।

हर हर हर हर साम्ब सदाशिव

साम्ब सदाशिव साम्ब शिवा ॥

* * *

ॐशिव ॐशिव, परात् परा शिव,

ॐकारा शिव तव शरणम् ।

नमामि शंकर, भवानीशंकर,

उमा-महेश्वर तव शरणम् ॥

गीतापाठका क्रम

गीतापाठके शुरूमें 'मूकं करोति' श्लोक और आखिरमें 'विपदो नैव विपदः' श्लोक बोला जाता है।

वार	अध्याय	श्लोकसंख्या
शुक्र	१, २	११९
शनि	३, ४, ५	११४
रवि	६, ७, ८	१०५
सोम	९, १०, ११, १२	१५१
मंगल	१३, १४, १५	८१
बुध	१६, १७	५२
गुरु	१८	७८

रागोंका कालक्रम

भिन्न भिन्न राग भिन्न भिन्न समय पर गानेका प्राचीन रिवाज है, जो मानसशास्त्रके अनुसार रसानुकूल और भावानुकूल है। इसका क्रम यह है :

सुबह ६ से ९

प्रभात, विभास, देसकार, शंकराभरण, भैरव, भैरवी, आनंद भैरवी, सिंध भैरवी, जोगी, रामकली।

सुबह ९ से दोपहर १२

आरभी, आसावरी, बिलावल, अल्हैया बिलावल, तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी, सुवासुघराई।

दोपहर १२ से ३

सारंग, ब्रिंदाबनी सारंग, मधुमाद सारंग, सिंधोरा, गौड़ सारंग, गौड़ मल्हार।

दोपहर ३ से शाम ६

मुलतानी, श्री, गौरी, पीलु , धनाश्री, पूर्वी, भीमपलासी, पूरिया धनाश्री, मारवा।

शाम ६ से रात ९

पहाड़ी, भूपाली (भूप), शंकरा, मांड, तिलक कामोद, तिलंग, कल्याण, यमन कल्याण, शाम कल्याण, बिहाग, देस, सोरठ, खमाज, गारा, जयजयवंती, काफी, बड़हंस, बरवा।

रात ९ से मध्यरात १२

झिंझोटी, हमीर, केदार, दुर्गा, छायानट, मालकंस, कानड़ा, दरबारी कानड़ा, मल्हार।

मध्यरात १२ से उत्तररात ३

अडाणा, बहार, बागेश्री।

उत्तररात ३ से सुबह ६

हिंडोल, वसंत, परज, कालिंगड़ा, ललित, पंचम, सोहनी।

हर समय गाने लायक़

खमाज, मांड, गारा, सिंधोरा, आनंद भैरवी, काफी, पहाड़ी, सिंध काफी, आसा, आसा-मांड, मांजी, छायाखमाज ।

कठिन शब्दोंका कोश

अक्सर = बहुत हद तक

अघ = गुनाह, पाप

अघात = तृप्त होता है

अजहुँ = अब भी

अजाजूथ = बकरियोंका जूथ

अटल = स्थिर

अनपायनी = अखण्ड

अनलहक़ = सोऽहम् , 'वह मैं हूँ'

अपुनपौ = अपनापन, खुदी

अभेद = जिसे भेदा न जा सके, अभेद्य

अमनि = ऐसेका ऐसा

अम्बर = आसमान, कपड़ा

अरगजा = चन्दन वगैरासे बनी खुशबूदार चीज़

अलेपा = माया-ममतासे रहित

आगम = (जैन) शास्त्र

आगा = भाईसाहब, आदरका सम्बोधन

आन = दूसरा

आपा = अपनेको

आबे-रूदे-गंगा = गंगाजलका प्रवाह

आरत = दु:खी

आलजाल = ऊटपटाँग

ईश = मालिक

उजाड़ = वीरान

उबारा = बचाया

उरग = साँप

उरझानी = उलझ गई

उलझ-उलझ = उलझकर

उलफ़त = प्रेम

ओसकन = शबनम

औखी = सख्त

औंटत = घट जानेसे

कंज = अमल

क़ज़ा = मौत

कंदर्प = कामदेव

कर्षे = खींच ले, खात्मा कर

कराह = कढ़ाई

करील = एक कँटीला पौधा

करेश = करेगा

कलप सत = सौ युगों तक

कवन = कौन

कसैहीं = कसूँगा

कँह = को

काई = पानीमें बढ़नेवाली एक तरहकी महीन घास

काछि = पहनकर

कामतरू = कल्पवृक्ष

कारवाँ = यात्रियोंका झुण्ड

कारी = काली

किताबें = शास्त्रोंकी किताबें

की नाईं = के समान

कूच मुकाम = आवागमन

कूज़ा = सुराही

कूँडी = कमण्डल, भीख माँगनेका बरतन

कूबकू = ठेर ठेर

कृपातें = कृपासे

केहि = बिधि = किस तरह

कोदण्डा = कोदंड, धनुष

कोह = गुस्सा

खहि = धूल

खिलोल = खेलता है

खुदनुमाई = घमण्ड

ख़ुदी = अहं

खुशा = निशान, इशारा

खेवटिया = केवट, मल्लाह

गच = काँचका फ़र्श

गदा = फ़क़ीर

ग़म = दुःख या रंज

गमनवाँ = जाना

ग्रंथि = गाँठ

गह लाये = ले आये

गहि = पकड़कर

गहिर = गहरा

गहौं = पकडूँ

गिरह = घर

गुंजा = घुँघची

गुमराह = भटका हुआ

गुमानी = घमण्डी

गुरबत = विदेश, परदेश

गुलशन = फुलवाड़ी, बग़ीचा

गृहपशु = कुत्ता

घन = बादल

घनकी मति = बादल जैसे

घरन = गृहिणी, स्त्री, औरत

घाम = धूप

चटकी = रंग, धून

चन्द रोज़ = थोड़े दिन

चाळी = छंद, नाद

चेरो = सेवक

छंग = उछंग, सिर, गोद

छति = क्षति, नुकसान

छिन = क्षण, पल

छोह = मेहरबानी

जतन = यत्न, कोशिश

जथा = जैसे

जनि = नहीं

जल्वा = शान = शौक़त

जव = जब

जवां = सम्बन्ध

जंतर = सोने-चाँदीके तार खींचनेका एक साधन

जागन्त = जाग्रत, सदा जागनेवाला

जाते = जिसमें

जाय = फ़जूल

जालिम = ज़ालिम

जासों = जिससे

ज़िक्र = नाम लेना

जिनाँ = स्वर्ग, जन्नत

जिमि = जिस तरह

जीतें = जानसे

जिव्हाळा = शक्ति

जेहि = जिससे, जिसे आँजनेसे

झकझोर = तूफ़ानी

टुक = ज़रा

ठौर = जगह, आसरा

डरपत = डरता है

डरिये = डरता हूँ, डरो

डाबर = डबरा, कुंड, हौज़

डसैहौं = डँसा जाऊँगा

डोर = डोरी

डोल = झूला

तव = तेरा

तसकीं = तसकीन

तनिक = ज़रा

तसबी = माला

तातें = इससे

तालिब = मिला

ताहिके = उसके

तिल ओले = तिलकी आड़में

तिहारे = तेरे

तिहुँकाल = तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान)

तृनसंकुल = घाससे ढँकी हुई

तृस्ना = तृष्णा, प्यास

तुराई = तुड़ाकर

त्रोन = तरकश

दर्दे-निहाँ = छिपी हुई वेदना

दलनिहार = नाश करनेवाला

दहौंगो = जलूँगा

दस्त = हाथ

दाहिनो = मेहरबान

दियना = दीपक

दुई = द्वैत, दो

द्रुमन = दरख़्त

दुरावा = छिपाता है

दुरे = छिपे

देहु = दो

दौरे-जमाँ = जमानेका चक्कर

द्रवौ = मेहरबान होओ

धुवन = धौंकनी

धुवनी = धोनेवाले

नफ़्सेशैताँ = विषयरूपी शैतान

नशेमें = खुदाई इश्ककी मस्तीमें

नसानी = जनम बिगड़ा

नसै हौं = नहीं बिगाड़ूँगा

नाई = नाई, हजाम

नाठे = भागे

नार = नाला

निदान = निश्चित

निरखत = देखते हैं

निर्वार = रोकना

निवाले = शान्त हुए

निस्तरिये = पार हो जाइये

निहारो = देखो

निहोरा = प्रार्थना

पखारे = धोनेसे

पचरंग चोल = मिट्टी, पानी वगैरा पाँच तत्त्वोंसे बना जिस्म

पचिहारी = थक गया

पचि-पचि = थक-थक कर

पछितैहै = पछताता है

पटकी = फेंक दी

पयादे = पैदल चलकर

परसि = स्पर्श कर, छूकर

परुष = कड़ा

पहँ = पास

पाक = पवित्र

पाय = पाकर

पास = फाँस, पाश, बन्धन

पासबाँ = रक्षा करनेवाला

पाँच कहरवा = पाँच कहार

पाँवर = पापी, पामर

पीर = दर्द, तकलीफ़

पीव = प्रीतम, माशूक

बटपारा = लुटेरा, डाकू

बड़भागी = भाग्यशाली

बधिक = कसाई

बहुर = फिरसे

बरजे = रोके

बरजोरा = ज़बरदस्ती

बरनौं = वर्णन करूँ, बयान करूँ

बरिआई = हठ, ज़बरदस्ती

बलमीक = दीमक

बसेरा = ठहरनेकी जगह

बहारेबाग़ दुनिया = दुनियाके बाग़की बहार

बाद मदफ़न = दफ़नानेके बाद

बान = आदत

बिगसाई = ख़ुश होता है

बिछुरत = अलग होते हुए

बिनसै = नष्ट होता है

बिथा = व्यथा, पीड़ा

बिरछ = वृक्ष, दरख़्त

बिराना = पराया

बिरियाँ = वक़्त

बू = बास

बेगाना = पराया

बेनु = वेणु , बाँस, बाँसुरी

बेजुर्म = बेक़सूर

बेड़ा = नाव

बेबहा = बेशक़ीमती

बेर = वक़्त, बार

बोधरिपु = नासमझी

बोस्ताँ = बाग़

बंकनाल = धातु गालनेका बरतन

बंध = बन्धन

भरनी = बाना (कपड़ा बुननेमें डाले जानेवाले आड़े धागे)

भवनवाँ = घर

भाजन = पात्र, क़ाबिल

भावना = ध्यान, विचार

मख = यज्ञ, होम

मतो = मत, राय

मदवा = मद्य, शराब

मनियत = मानते हैं

मयख़ाना = शराब-घर

मलके = घिसकर

महतारी = माँ

महरम = भेद जाननेवाला

महँ = में

मारा = मार, कामदेव

मिडयोहि = भरा है

मीत = मित्र, दोस्त

मुकुर = आईना

मुश्क = कस्तूरी

मुसल्ला = नमाज़की चटाई

मूँदो = बन्द करो

मूरत = मूर्तियाँ

मोट = मोटरी, गठरी

मोते = मुझसे

रब = ईश्वर

रश्क = प्रतिस्पर्धा, डाह

रह्यौ = रहा

राहिब = मल्लाह

रीते = खाली हाथ

रैनी, रैना = रात

लला = अज़ीज़, प्यारा

ललितललाम = सबसे ज़्यादा खूबसूरत

लव लाई = लौ लगाकर

लहौंगो = पाऊँगा

लाट = मोटा व ऊँचा खंभा

लाल = नदी, देवता या लहरोंका स्वामी

लाहे = लाभ, मुनाफ़ा

लुकमाँ = लुकमान हकीम

लौ = ध्यान

वजु = नमाज़के पहले हाथ-मुँह धोना

वदति = कहता है

वनितनि = वनिताओंको, औरतोंको

वसनन = कपड़े

विरति = विराग

विरद हित = बड़प्पन रखनेके लिए

विर्दे-ज़बाँ = ज़बान पर चढ़ी हुई

व्याल = साँप

शबद = शब्द, नाम

शराबेशौक़ = ईश्वरके प्रेमकी शराब

श्रीखंड = चन्दन, सन्दल

सकुच सहित = संकोचके साथ

सचराचर = जंगम-स्थावर

सरन = सरोवर, तालाब

सरा = सराय, धर्मशाला

सरिस = सरीखा

सरी = बनी या हुई

सहहिं = सहते हैं

सहि = सिंह

सँवारी = सुधारी, सम्हाली

साकर = सँकरा

साख = गवाह

साटै = साटेमें, बदलेमें

सामान = तैयारी

साही = मददगार

सिजदा = प्रणाम

सिमिटि = सिमटकर

सिरानी = बीत गई

सिलीमुख = शिलीमुख, बाण

सीरत = गुण

सुआ = तोता

सुन्नमहल = दिलका आकाश

सुरत कलारी = प्रेमकी शराब बेचनेवाली ध्यानरूपी कलवारिन

सुरभि = ख़ुशबू

सुरसरि = सुरसरिता, गंगा

सुहाग = अहिवात

सुहागा = एक तरहका खनिज पदार्थ

सूकर = सूअर

सेन = श्येन, बाज

सेमर = सेमल

सौरज = शौर्य, शूरता, बहादुरी

स्यंदन = रथ

स्वपच = श्वपच, चांडाल

हक़ = सत्य

हमसाया = पड़ौसी

हव्यास = ज़बरदस्त इच्छा

हसरत = निराशा, नाउम्मेदी

हिज्र = जुदाई, वियोग

हीते = दिलसे

हुताशन = अग्नि

हौं = मैं